बदलते परिवेश में पनपते अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के विभिन्न आयामों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन
(हमीरपुर जनपद के विशेष संदर्भ में)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में समाजशास्त्र विषय में
पी-एच0डी0 उपाधि हेतु प्रस्तुत
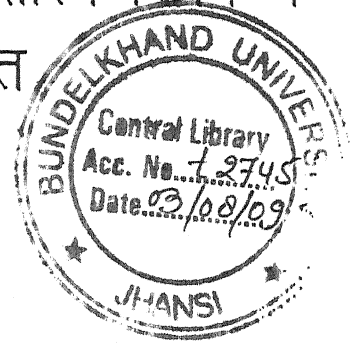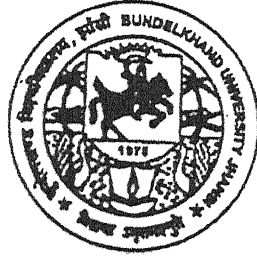
शोध-प्रबन्ध

शोध निदेशिका
डा० दिव्या सिंह, रीडर
समाजशास्त्र विभाग
पं.जे.एल.एन.पी.जी.कालेज,
कालेज, बाँदा (उ०प्र०)

गवेषिका
सुनीता त्रिपाठी
समाजशास्त्र विभाग
श्री स्वामी नागा जी बालिका
डिग्री कालेज,भरूआ सुमेरपुर
हमीरपुर(उ०प्र०)

डॉ० दिव्या सिंह
रीडर

समाजशास्त्र विभाग
पं.जे.एल.एन.पी.जी. कालेज
बांदा उ0प्र0

प्रमाण – पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती सुनीता त्रिपाठी ने समाजशास्त्र विषय में पी-एच.डी. की उपाधि **''बदलते परिवेश में पनपते अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के विभिन्न आयामों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन''** (हमीरपुर जनपद के विशेष संदर्भ में) हेतु मेरे निर्देशन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झांसी के पत्रांक बु0वि0/प्रशासन/शोध/2005/4381-83 दिनांक 11.08.05 के द्वारा पंजीकृत हुई थी।

श्रीमती सुनीता त्रिपाठी ने मेरे निर्देशन में विश्वविद्यालय के नियमानुसार वांछित अवधि तक शोध केन्द्र में उपस्थित रहकर शोध के सभी चरणों को अत्यन्त सन्तोषजनक रूप से परिश्रमपूर्वक सम्पन्न किया है।

मै इस शोध प्रबन्ध को समाजशास्त्र विषय में पी-एच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति करती हूँ।
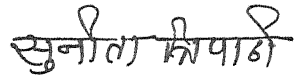
दिनांक :- 19/8/07

(डॉ0 दिव्या सिंह)
शोध निर्देशिका

घोषणा

मैं घोषणा करती हूँ कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालयए झांसी के अन्तर्गत समाजशास्त्र विषय में डाक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध **''बदलते परिवेश में पनपते अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के विभिन्न आयामों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन'' (हमीरपुर जनपद के विशेष संदर्भ में)** मेरा मौलिक कार्य है। मेरे अभिज्ञान में प्रस्तुत शोध का अल्पांश अथवा पूर्णांश किसी भी विश्वविद्यालय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी अथवा अन्य किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

दिनांक :- 19/8/07

सुनीता त्रिपाठी

(श्रीमती सुनीता त्रिपाठी)
गवेषिका

आभार

''कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती'' यदि गुरू का वरदहस्त साथ हो तो इस उक्ति की सार्थकता और भी बढ़ जाती है। शोध उपाधि को प्राप्त करने के उद्देश्य से इसी उक्ति के सहारे शोध विधा के दुर्गम पथ पर बढ़ने की कोशिश की, किन्तु शोध विधा के दुर्गम पथ को पार कर पाना मुझ जैसी अल्पज्ञ शोध गवेषिका के सामर्थ्य से परे था। ऐसे क्षणों में शोध विधा में महारत प्राप्त मेरी आदरणीया डॉ० दिव्या सिंह, रीडर, समाजशास्त्र विभाग पं०जे.एल.एन.पी.जी. कालेज, बांदा का कुशल निर्देशन एवं आशीष के बल पर मैं इस शोध प्रज्ञा को पूरा कर सकी। डॉ० दिव्या सिंह जी मेरी शोध निर्देशिका ही नहीं बल्कि मेरे विद्या-भवन की आराध्या है जिनका स्नेहिल सहयोग सदैव मेरे साथ रहा।

शोध निर्देशिका के रूप में उनके अमूल्य निर्देशन, सुझाव एवं लक्ष्य पाने की जिन विधाओं से उन्होने मुझे परिचित कराया वह स्मरणीय ही नहीं बल्कि जीवन में धारण करने की अमूल्य धरोहर है, मैं उनकी इस अनुकम्पा की सदैव ऋणी रहूँगी। मैं अपनी अशेष श्रद्धा उनके सम्मान में अर्पित करती हूँ।

मैं डॉ० स्वामी प्रसाद, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हमीरपुर, उ०प्र० के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके असीम सहयोग एवं उदारतापूर्ण व्यवहार से यह शोध यज्ञ पूरा हो सका।

मैं डॉ० जे.पी.नाग, पूर्व विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग पं०जे. एल.एन.पी.जी. कालेज, बांदा एवं डॉ० निर्मला शर्मा, रीडर समाजशास्त्र विभाग के साथ-साथ डॉ० एस.एस. गुप्ता, रीडर समाजशास्त्र पं०जे.एल.एन.पी.जी. कालेज बांदा के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके प्रेरणाप्रद सहयोग ने मेरी कलम की कोर को धार प्रदान की।

मै डॉ० गीता गुप्ता, प्राचार्या श्री स्वामी नागाजी बालिका डिग्री कालेज, भरूआ सुमेरपुर एवं अपनी सहयोगी प्राध्यापिकाओं के प्रति आभार ज्ञापित करती हूॅ जिनके सतत् सहयोग ने सदैव मुझे शोध पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान की।

मै अपनी सास पूज्यनीया श्रीमती रामश्री एवं श्वसुर पूज्य श्री भागवत प्रसाद द्विवेदी, अध्यापक के प्रति नतशीश हूॅ जिनका इस शोध लक्ष्य को प्राप्त करने में सदैव अप्रत्यक्ष आशीष प्राप्त होता रहा है।

मैं अपनी माता जी श्रीमती फूलकुमारी त्रिपाठी एवं पिता श्री रामकिशोर त्रिपाठी, अग्रज डॉ० अरूण कुमार त्रिपाठी, भावज श्रीमती मंजू के साथ अनुज श्री देवेश के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूॅ जिनका सहयोग सदैव पग-पग पर प्राप्त होता रहा है।

मैं अपने प्रणयी श्री प्रमोद कुमार द्विवेदी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूॅ जिन्होने पारिवारिक दायित्व से मुक्त रखकर मुझे इस लक्ष्य को पाने में नित नवीन उत्साह से सहयोग प्रदान किया। मैं अपनी सखियों राधा सोनी एवं चन्द्ररेखा मिश्रा के प्रति भी आभार ज्ञापित करती हूॅ जिन्होंने निराशा के क्षणों को दूर करने का कार्य किया।

मै पं०जे.एल.एन.पी.जी. कालेज बांदा के पुस्तकालयाध्यक्ष के प्रति विनयावत हूॅ जिनसे पुस्तकीय सहयोग मुझे समय-समय पर मिलता रहा।

मैं हमीरपुर जनपद के वृद्ध व्यक्तियों एवं युवा सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करती हूॅ जिनके सहयोग के बिना तथ्यों का संग्रहण असंभव था।

शोध टंकण के लिए श्री जनक, आर.बी.कम्प्यूटर्स, जजी रोड हमीरपुर एवं आवरण सज्जा के लिए अहमद बाइंडर्स, कानपुर बधाई के पात्र हैं जिनके अपूर्व सहयोग से मेरा यह अभीष्ट पूर्ण हो सका। इन सभी के अतिरिक्त मै उन

सभी जाने-अनजाने सुधीजनों की हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने शोध प्रज्ञा की साधना को पूर्ण करने में मेरा सहयोग किया।

दिनांक :- 19/8/07

सुनीता त्रिपाठी

(श्रीमती सुनीता त्रिपाठी)
गवेषिका

अनुक्रम

अध्याय–1

प्रस्तावना

- संघर्ष
- अन्तर-पीढ़ी संघर्ष
- पीढ़ियों का अन्तर
- युवा वर्ग
- वृद्धजन
- अन्तर-पीढ़ी संघर्ष
- साहित्य का पुनरावलोकन
- शोध अध्ययन के उद्‌देश्य
- शोध अध्ययन की उपयोगिता

1. प्रस्तावना

आज युवा वर्ग/ पीढ़ी और समाज व्यवस्था के बीच एक बड़ा भारी अन्तर आ गया है। समाज में इस वर्ग को क्रान्तिकारी, विवेकहीन और अपरिपक्व समझा जाता है दूसरी ओर यह वर्ग बहुत ज्यादा तनाग्रस्त, चिन्तित और व्यथित है। समाज में उन कारणों को जानने का प्रयास ही नहीं किया जाता जिनकी वजह से युवा पीढ़ी ग्रस्त है। उनकी क्या समस्याएँ ? वे समस्याएँ किन कारणों से हैं ? उनका क्या निदान है ? इन सबका समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से गहन अध्ययन होना आवश्यक है।

1.1 संघर्ष

संघर्ष को एक मौलिक और सार्वभौमिक सामाजिक प्रक्रिया माना गया है जो प्रत्येक समाज और काल में कम या अधिक मात्रा में पाया जाता है। पूर्णतः संघर्ष रहित समाज का पाया जाना असम्भव है। संघर्ष सामाजिक सम्बन्धों में हर समय मौजूद रहता है। यह जीवन की एक वास्तविकता है, इसे अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता। व्यक्तियों और समूहों के बीच शारीरिक, भावनात्मक, सांस्कृतिक तथा व्यवहार सम्बन्धी अन्तर पाये जाते हैं। ये भेद विरोध, वैमनस्य और संघर्ष तक के लिए उत्तरदायी हैं। व्यक्ति या समूह अपने विरोधी से घृणा करने लगता है। उसके प्रति रोष व्यक्त करता है, क्रोध प्रकट करता है जो कभी भी संघर्ष के रूप में बदल सकता है, जब कोई व्यक्ति या समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्द्धा का मार्ग छोड़कर हिंसा का सहारा लेता है, विरोधी को नुकसान पहुँचाने, उसे पराजित करने या समाप्त करने का प्रयत्न करता है तो संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। जब विरोधी के प्रति घृणा और क्रोध के भाव बहुत तीव्र हो जाते हैं तो उस पर आक्रमण करने और उसे हानि पहुँचाने की इच्छा बलवती हो जाती है, परिणामस्वरूप संघर्ष होता है। संघर्ष

में साधनों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता जितना साध्य (लक्ष्य प्राप्ति) पर । इसमें हिंसा के भय या बल प्रयोग का सहारा लिया जाता है। जब अनेक व्यक्ति और समूह किसी सीमित लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते हैं और उनका मुख्य ध्यान लक्ष्य पर रहता है चाहें उन्हें कैसे ही साधन क्यों न अपनानें पड़ें तो ऐसी स्थिति में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है। संघर्ष के पीछे व्यक्तिगत कारण भी पाये जा सकते हैं और समूहगत कारण भी ।

संघर्ष का अर्थ स्पष्ट करते हुए मैकाइवर तथा पेज ने लिखा है "सामाजिक संघर्ष में वे सभी क्रिया-कलाप सम्मिलित हैं जिसमें मनुष्य किसी भी उद्देश्य के लिए एक दूसरे के विरूद्ध लड़ते या विवाद करते हैं।"

ए.डब्ल्यू.ग्रीन के अनुसार "संघर्ष दूसरे या दूसरों की इच्छा के विरोध, प्रतिकार या बलपूर्वक रोकने के विचारपूर्वक प्रयत्न को कहते हैं।[1]

गिलिन एवं गिलिन ने लिखा है, "संघर्ष वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति अथवा समूह अपने लक्ष्यों की प्राप्ति, विरोधी को प्रत्यक्ष हिंसा की चुनौती देकर करते हैं।[2]

अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए बल-प्रयोग या हिंसा की धमकी द्वारा दूसरों की इच्छाओं को दबाना या उनके उद्देश्यों की प्राप्ति के मार्ग में बाधा उपस्थित करना ही संघर्ष है। विभिन्न विद्वानों ने संघर्ष में हिंसा, आक्रमण एवं उत्पीड़न को साधारणतः आवश्यक माना है। किंग्सले डेविस के अनुसार जहां प्रतिस्पर्द्धियों का ध्यान प्रतिस्पर्द्धा से हटकर प्रतिद्वान्द्वियों पर केन्द्रित हो जाता है, वहीं संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है।

समाजशास्त्र में संघर्ष की विचारधारा का उदय अपेक्षतया देर से हुआ। इसमें राजनीतिक और आर्थिक दोनों प्रकार के संघर्ष सिद्धान्तों का सम्मिश्रण देखने को मिलता है । राबर्ट निपार्क ने अपनी पुस्तक The Sociological Tradition, 1967 में ऐसी अनेक अवधारणाओं का उल्लेख किया है जिनका विकास पिछले 100 वर्षो में हुआ है। उनमें

---

[1] ए.डब्ल्यू. ग्रीन. सोशियोलॉजी , पृ0सं0 - 38

[2] गिलिन और गिलिन, सांस्कृतिक समाजशास्त्र, पृ0सं0 625

संघर्ष की अवधारणा का कही कोई उल्लेख नहीं है। इससे स्पष्ट है कि समाजशास्त्रीय साहित्य में संघर्ष की अवधारणा का विकास सन् 1967 के बाद ही हुआ है, अतः इसका इतिहास 30-35 वर्षो से अधिक पुराना नहीं है। यद्यपि अमेरिकन सोशियोलॉजिकल सोसाइटी ने 1907 और 1930 के अपने सम्मेलनों में सघर्ष विषय को विचार-विमर्श के लिए चुना था। कूले, स्माल, पार्क तथा रॉस जैसे समाजशास्त्रियों ने अमेरिका में संघर्ष सम्बन्धी विचारधारा के बारे में कुछ साहित्य का सृजन किया। प्रथम महायुद्ध के बाद संघर्ष का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने वालों में रॉवर्ट पार्क का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने संघर्ष को मानवीय अन्तःक्रिया का महत्वपूर्ण स्वरूप बताया। उन्होंने कहा कि संघर्ष करने वाले समूहों में संघर्ष की भूमिका एकीकरण, आधिपत्य एवं अधीनता स्थापित करने वाली होती है। द्वितीय महायुद्ध के समय संघर्ष का समाजशास्त्रीय अध्ययन करने वालों में जॉर्ज लुण्डवर्ग का प्रयास सराहनीय रहा हैं उन्होंने अपनी पुस्तक The Foundation of Sociology, 1939 में संघर्ष के बारे में लिखा है कि "यह तो विरोधी दलों" में संचार व्यवस्था का स्थगित हो जाना है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अनेक समाजशास्त्रियों ने संघर्ष के क्षेत्र में अपना अध्ययन कार्य किया। ऐल्टन मेयो तथा रूथलि सबर्गर ने औद्योगिक समाज में संघर्ष का उल्लेख किया और यह जानने का प्रयास किया कि औद्योगिक समाज में संघर्ष को दूर करने एवं साम्य स्थिति को लाने के लिए क्या प्रयास किये जाने चाहिए। वॉरनर ने सन् 1947 में सामाजिक संघर्ष की समस्या पर मानविकी दृष्टिकोण से विचार किया। कुर्ट लेविन ने भी संघर्ष के क्षेत्र में कार्य किया। संघर्ष के क्षेत्र में कार्ल मार्क्स , मैक्स वेबर, डेहरडोर्फ, सी. राइट मिल्स, होरोविज, मारक्यूज, कालिन्स, आन्द्रफ्रेंक, गालटुंग एवं लॉकबुड, पारसन्स मैक तथा स्नाईडर, कोजर तथा ग्लकमैन, जार्जसिमेल, आदि समाज वैज्ञानिकों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री मार्टिण्डेल ने मानव समाज में संघर्ष सम्बन्धी विचारों का ऐतिहासिक ब्यौरा दिया है। भारत में कौटिल्य ने अपनी पुस्तक "अर्थशास्त्र" में सामाजिक संघर्ष का उल्लेख ईसा से तीसरी शताब्दी पूर्व में किया था। यूनानी दार्शनिकों के साहित्य में भी राजनीतिक संघर्ष का उल्लेख किया गया। पालीबियस नामक यूनानी दार्शनिक ने राजनीतिक संस्थाओं में पाये जाने वाले संघर्ष का उल्लेख किया है। प्राचीन अरब देशों के साहित्य में भी संघर्ष का वर्णन मिलता है। इब्न खाल्दून ने कृषक समाज और घुमन्तू जीवन व्यतीत करने वाले आदिवासियों के बीच पाये जाने वाले संघर्ष का उल्लेख किया है। यूरोप के प्रसिद्ध विद्वान मैकियावली ने मध्यकालीन यूरोपीय समाज में पाये जाने वाले राजनीतिक संघर्ष का उल्लेख किया है। राजनीतिक संघर्ष का उल्लेख करने वालों में हॉब्स, जीन बोडिन, लॉक, डेविड ह्यूम, फरग्यूसन एवं मॉस्का के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

अनेक विद्वानों ने समाज के आर्थिक जीवन में पाये जाने वाले संघर्ष का उल्लेख किया है। इन विद्वानों में एडम स्मिथ और माल्थस प्रमुख हैं। इन विद्वानों का मत है की समाज में आदिकाल से ही आर्थिक प्रतियोगिता और संघर्ष होते चले आये हैं। माल्थस ने संघर्ष को जनसंख्या वृद्धि से जोड़ा और कहा कि जब किसी देश में जनसंख्या आवश्यकता से अधिक बढ़ जाती है तो अस्तित्व के लिए जीवन-संघर्ष बढ़ जाता है तथा संघर्ष और युद्ध सामान्य प्रक्रियाएं बन जाते हैं। आधुनिक युग में तकनीकी विकास ने आर्थिक जगत में प्रतियोगिता और संघर्ष की प्रक्रिया को और अधिक गतिशील बना दिया है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर संघर्ष की निम्नांकित विशेषताएं सामने आती हैं जो संघर्ष की प्रकृति को स्पष्ट करने में योग देती है।

1. संघर्ष के लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों अथवा समूहों का होना आवश्यक है । एक दूसरे के हितों को हिंसा की धमकी, आक्रमण, विरोध या उत्पीड़न के माध्यम से चोट पहुँचाने की कोशिश करते हैं।

2. संघर्ष एक चेतन प्रक्रिया जिसमें संघर्षरत व्यक्तियों या समूहों को एक-दूसरे की गतिविधियों का ध्यान रहता है। वे अपने लक्ष्य की प्राप्ति के साथ-साथ विरोधी को मार्ग से हटाने का प्रयत्न भी करते हैं।
3. संघर्ष एक वैयक्तिक प्रक्रिया इसका तात्पर्य यह है कि संघर्ष में ध्यान लक्ष्य पर केन्द्रित न होकर प्रतिद्वान्द्वियों पर केन्द्रित हो जाता है । वहां सामान्य व्यक्तियों या समूहों के साथ संघर्ष नहीं किया जाता बल्कि व्यक्ति विशेष या समूह विशेष के साथ संघर्ष किया जाता है। परिणामस्वरूप प्रतिद्वन्द्वी एक दूसरे को भली-भांति जानते हैं और इसलिए इसे वैयक्तिक प्रक्रिया माना गया है।
4. संघर्ष एक अनिरन्तर प्रक्रिया इसका अर्थ यही है कि संघर्ष सदैव नहीं चलता रहता बल्कि रूक-रूक कर चलता है। इसका कारण यह है कि संघर्ष के लिए शक्ति और अन्य साधन जुटाने पड़ते हैं जो किसी भी व्यक्ति या समूह के पास असीमित मात्रा में पाये जाते है। परिणामस्वरूप कोई भी व्यक्ति या समूह सदैव संघर्षरत नहीं रह सकता। इतिहास बताता है कि मानव ने युद्ध में जितना समय बिताया, उससे कई गुना अधिक शान्ति में बिताया है।
5. संघर्ष एक सार्वभौमिक प्रक्रिया इसका तात्पर्य यह है कि संघर्ष किसी न किसी रूप में प्रत्येक समाज और प्रत्येक काल में कम या अधिक मात्रा में अवश्य पाया जाता रहा है। जहां व्यक्तियों और समूहों के स्वार्थ एक दूसरे से टकराते हैं वहीं संघर्ष उत्पन्न हो जाता है।

1.2 अन्तर-पीढ़ी संघर्ष

नयी या युवा पीढ़ी और पुरानी या वृद्ध पीढ़ी के बीच पाया जाने वाला भेद अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के लिए काफी सीमा तक उत्तरदायी है। पुरानी और नवीन पीढ़ी के मूल्यों, विश्वासों, अभिवृत्तियों और व्यवहार- प्रतिमानों में काफी अन्तर पाया जाता है। इसका मूल कारण था पीढ़ियों में समय का अन्तर है। पुरानी पीढ़ी के लोगों का समाजीकरण और

उनके व्यक्तित्व का विकास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व जिस पर्यावरण में हुआ, आज वह काफी कुछ बदल चुका है। वर्तमान में सामाजिक परिवर्तन की गति काफी तीव्र है। आज सामाजिक संरचना में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखायी पड़ते हैं। अब प्रदत्त के बजाय अर्जित परिस्थितियों का महत्व बढ़ता जा रहा है। आज का नवयुवक अपने प्रत्यनों से आगे बढ़ना चाहता है, कुछ स्वतन्त्रता चाहता है, अपने लिए स्वयं कुछ निर्णय लेना चाहता है। वह पुरानी पीढ़ी की तुलना में उदार और मानवतावादी दृष्टिकोण से सोचने लगा है। आधुनिक शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने उसके जीवन मूल्यों को बहुत कुछ प्रभावित किया है। औद्योगीकरण और नगरीयकरण की प्रक्रियाओं ने भी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र और सामाजिक दृष्टि से उदार बनाया है। सह-शिक्षा तथा स्त्री-पुरूषों के विविध क्षेत्रों में साथ-साथ काम करने से रोमांस पर आधारित प्रेम विवाहों का महत्व बढ़ा है। पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी ही जाति में विवाह करते थे। उनका विवाह उनके माता-पिता एवं नातेदारों द्वारा तय होता था, किन्तु नयी पीढ़ी का युवक जाति-पांति के बन्धनों की चिन्ता नहीं करते हुए मनचाही लड़की से विवाह करना चाहता है। जहां परिवार, जाति और समाज के लोग इसमें बाधक बनते हैं, वहां संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी पुरानी मान्यताओं के अनुसार अपनी सन्तानों को व्यवहार करते देखना चाहती है जबकि नवीन पीढ़ी के युवक अपने स्वयं के मूल्यों, अभिवृत्तियों एवं विश्वासों के आधार पर कार्य करना चाहते हैं। आज की वधू पुरानी पीढ़ी की वधू के जैसे घूंघट नहीं निकलना चाहती, पति के साथ इधर-उधर सैर-सपाटे पर जाना चाहती है, नौकरी करना चाहती है, अपने बालकों को अपनी इच्छानुसार शिक्षा दिलाना चाहती है। सास-ससुर और परिवार के अन्य वृद्ध सदस्यों को यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता। वे इन बातों का विरोध करते हैं। परिणामस्वरूप पुरानी और नवीन पीढ़ी में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है।

डा0 दामले का विचार है कि नवीन पीढ़ियां स्वयं उठना चाहती है और अपना पृथक अस्तित्व या व्यक्तित्व बनाना चाहती है, परन्तु समाज की विविध धार्मिक

असहिष्णुता ने भी हिन्दू-मुसलमानों में संघर्ष को जन्म दिया। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए ''फूट डालो और राज करो'' की नीति अपनाई जिसके कारण हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ते रहे। आज भी विभिन्न धर्म के लोग राष्ट्रीय हितों को तिलांजलि देकर अपने धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त अन्य लोगों के प्रति घृणा, संदहे और दुराग्रह के भाव रखते हैं जिसके फलस्वरूप धार्मिक संघर्ष पैदा हुआ।

भारत में धार्मिक संघर्ष हिन्दू एवं मुसलमानों में ही नहीं वरन् अन्य धर्मावलम्बियों, जैसे निरंकारियों एवं अकालियों, शिया एवं सुन्नियों, हिन्दू, जैनियों, बौद्धों और ईसाइयों में भी हुए हैं किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।

1.3.3 अन्तर-पीढ़ी संघर्ष : वर्ग के सन्दर्भ में

अन्तर पीढ़ी संघर्ष हमें विभिन्न वर्गो के बीच भी देखने को मिलता है। ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के वर्ग पाये जाते हैं । गांव में मुख्यतः दो वर्ग हैं, एक भूस्वामी या साहूकारों का तथा दूसरा कृषक और खेतिहर मजदूरों का । इन दोनों के बीच आजादी से पूर्व एव आजादी के बाद अनेक तनाव पैदा हुआ । गांव में राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान किसानों में जागृति आयी । उन्होंने अपने संगठन क्षेत्र एवं नेताओं को तैयार किया। गांधी जी के नेतृत्व में बिहार के चम्पारण जिले के किसानों ने यूरोपीय भूस्वामियों से संघर्ष किया। असहयोग आन्दोलन के दौरान भी किसानों में राजनीतिक जागृति आयी। मालाबार में हिन्दू, मुस्लिम वर्गो में संघर्ष हुए। गुजरात में सरदार पटेल के नेतृत्व में किसान संगठित हुए। उत्तर प्रदेश के कई गांवों जैसे सुल्तानपुर जिले के हमीरपुर गांव, केमा गांव तथा बलिया जिले के शहपुर गांव में भी किसानों और भू-स्वामियों के बीच संघर्ष हुए। इसी प्रकार के संघर्ष मालवार, तेलंगाना, त्रिपुरा, मणिपुर एवं बंगाल में भी हुए।

नगरों में औद्योगिकरण के फलस्वरूप दो वर्ग पैदा हुए : पूंजीपति एवं श्रमिक वर्ग । दोनों ही वर्गो में अपने-अपने हितों को लेकर संघर्ष पनपे। मार्क्स ने इन दोनों के बीच संघर्ष का विस्तार से उल्लेख किया है। प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्ध में भी अनेक वर्ग संघर्ष हुए। ''कोयम्बटूर, नागपुर, बंगाल, मुम्बई, अहमदाबाद, कोलकता एवं बिहार आदि क्षेत्रों में भी वर्ग संघर्ष हुए।''

आज वर्ग संघर्ष विश्व के अनेक देशों में भीषण रूप धारण करता जा रहा है। जब एक समूह अपने को श्रेष्ठ और अन्य को हीन समझ कर अपने स्वार्थ या हितों के लिए उसे अपने अधिकार में रखने का प्रयत्न करता है तो वर्ग-संघर्ष उत्पन्न होता है। इस प्रकार हितों में आर्थिक लाभ, राजनीतिक शक्ति या सामाजिक प्रतिष्ठा आदि आते हैं। पूंजीवादी समाज में उद्योगपतियों और मजदूरों में आर्थिक विषमता बढ़ गई है। फलस्वरूप दोनों में संघर्ष की स्थिति पैदा हुई है।

पुरानी एवं नई पीढ़ियों में गांवों एवं नगरों में दोनों ही स्थानों पर अन्तर-पीढ़ी संघर्ष पाया जाता है।

1.3.4. प्रजातीय क्षेत्र में अन्तर

पीढ़ी संघर्ष एक प्रजाति और दूसरी प्रजाति में शारीरिक अन्तर स्पष्टतः दिखाई पड़ते हैं और जब दो भिन्न प्रजातियां एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं तो कई बार उनमें संघर्ष भड़क उठता है। इसे ही प्रजातीय संघर्ष कहते हैं। इस प्रकार के संघर्ष अमरीका में श्वेत और नीग्रो प्रजातियों और अफ्रीका में श्वेत और श्याम प्रजातियों के लोगों के बीच पाये जाते हैं। प्रजातीय संघर्ष का एक प्रमुख कारण अपनी प्रजाति को अन्य प्रजातियों की तुलना में श्रेष्ठ समझने की अवैधानिक धारणा है। यद्यपि प्रजातीय संघर्ष के लिए सांस्कृतिक भिन्नता और विशेषतः आर्थिक हितों का टकराव प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। प्रजातीय संघर्ष के लिए हीन समझी जाने वाली प्रजाति का आर्थिक शोषण भी एक मुख्य कारक है। पुरानी

पीढ़ी में प्रजातीय भेद की भावना अधिक पायी जाती है, जबकि नई पीढ़ी इस भेद को अवैधानिक मानती है। इस प्रजातीय भेद के कारण ही पुरानी एवं नवीन पीढ़ी में अर्थात अन्तर पीढ़ी संघर्ष पाया जाता है।

1.3.5 अन्तर-पीढ़ी संघर्ष राजनीतिक संदर्भ में

राजनीतिक संघर्ष के दो रूप देखने को मिलते हैं, प्रथम एक ही राष्ट्र के विभिन्न राजनीतिक दलों के बीच होने वाला संघर्ष, द्वितीय विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में विचारों के बीच होने वाला संघर्ष जिसे अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष कहा जाता है। जिन राष्ट्रों में विचार व्यक्त करने और संगठन बनाने की स्वतन्त्रता होती है और स्वतन्त्रात्मक प्रकार की शासन व्यवस्था पायी जाती है, वहां अनेक राजनीतिक दल बन जाते हैं। ये दल अपने सिद्धान्तों, नीतियों और कार्यक्रमों के आधार पर शान्तिमय तरीके से जनता का समर्थन प्राप्त कर अपनी-अपनी सरकार बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसे राजनीतिक दलों के बीच पाये जाने वाली प्रतिस्पर्धा कहा जायेगा। लेकिन कई बार एक राजनीतिक दल दूसरे दल या विरोधी नेताओं के विरूद्ध घृणा फैलाता है, भ्रामक प्रचार करता है, चरित्र हनन का प्रयास करता है और जब ये बातें बढ़ जाती हैं तो अपराध होता है, मारपीट होती है, तक का सहारा लिया जाता है। यह राजनीतिक संघर्ष हैं।

1.4 पीढ़ियों का अन्तर

युवा पीढ़ी तथा माता-पिता, शिक्षक आदि की बड़ी पीढ़ी में अन्तर तथा संघर्ष के कारण युवा असन्तोष पैदा होता है। इन दोनों पीढ़ियों के लक्ष्य, मूल्य, आदर्श, सोच आदि में बड़ा अन्तर तथा भिन्नता होती है। नयी पीढ़ी तथा पुरानी पीढ़ी के टकराव तथा संघर्ष पर दामले तथा वी.के.आर.वी. राव ने अपने विचार व्यक्त किये हैं।

दामले के अनुसार नयी पीढ़ी स्वयं ऊपर उठना चाहती है और अपना अलग व्यक्तित्व या अस्तित्व बनाना चाहती है लेकिन समाज की विभिन्न परिरिस्थितियां उसके ऐसा करने के रास्ते में बाधक होती है।

बी.के.आर.वी. राव का कहना है कि राजनैतिक परिवर्तन और औद्योगिक, तकनीकीकरण के कारण युवाओं के मन में परम्परागत जीवन-मूल्यों और सांस्कृतिक और सामाजिक स्थापनाओं के प्रति आस्था समाप्त हो गई है। आज का युवा दो विरोधी मूल्यों मान्यताओं तथा आदर्शो के संघर्ष के बीच जी रहा है। यही युवा असन्तोष तथा अनुशीसनहीनता पैदा कर रही है। अनेक समाजशास्त्रियों तथा शिक्षा-शास्त्रियों ने युवा समस्या व असन्तोष का मुख्य कारण पुरानी पीढ़ी और नयी तथा युवा पीढ़ी के मूल्यों का संघर्ष बताया है।

मर्टन के विचार

मार्टन के सिद्धान्त के अनुसार युवा अनुशासहीनता की व्याख्या निम्नप्रकार से की जा सकती है। आपका मत है कि समाज में सास्कृतिक लक्ष्य होते हैं तथा उन लक्ष्यों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए संस्थागत साधन होते हैं। जब कोई व्यक्ति उनसे भिन्न लक्ष्यों का चयन करता है अथवा संस्थागत साधनों का भी उपयोग नहीं करता है तो ये अनुशासनहीनता है तब अनुशासनहीनता इतनी अधिक हो जाती है कि उसे नियंत्रित करना कठिन हो जाता है तो समाज में विघटन तथा अव्यवस्था की स्थिति पैदा हो जाती है। सांस्कृतिक लक्ष्यों और संस्थागत साधनों के संदर्भ में युवा अनुशासनहीनता निम्न तीन प्रकार की स्थिति के रूप में हो सकती है :-

- जब युवा सांस्कृतिक लक्ष्यों के अतिरिक्त अन्य लक्ष्यों का चयन करता है परन्तु पूर्ति के लिए संस्थागत साधनों का चयन करता है तो अनुशासनहीनता होती है। समाज की संस्कृति के अनुसार लक्ष्यों, इच्छाओं या आवश्यकता का चयन नहीं है। अन्य लक्ष्यों का चयन किया है जो संस्कृति के अनुसार मान्य नहीं है।

- जब युवा सांस्कृतिक लक्ष्यों, उद्‌देश्यों तथा आवश्यकताओं के अनुसार अपने लक्ष्यों तथा आवश्यकताओं का चुनाव करता है परन्तु उनकी पूर्ति करने के लिए संस्थागत साधनों का चयन नहीं करता है बल्कि अन्य अमान्य साधनों के द्वारा अपने लक्ष्यों को पूरा करता है तो यह भी अनुशासनहीनता है।
- तीसरे प्रकार की अनुशासनहीनता वह है जिसमें युवा-सांस्कृतिक लक्ष्यों तथा संस्थागत साधनों दोनों ही परित्याग करके अपनी इच्छानुसार अन्य लक्ष्यों तथा अपरम्परागत साधनों का चयन करता है यह अनुशासनहीनता अधिक विघटनकारी होती है। आज यह अराजकता की स्थिति पैदा कर सकती है।

युवा जब अपने लक्ष्यों तथा साधनों को अपनी क्षमता तथा पहुँच के बाहर पाता है तो उससे समस्या उत्पन्न होती है, उसमें असन्तोष पैदा हो जाता है जो उसे अनुशासनहीनता करने के लिए विवश करती है।

अस्थाना एवं सूभा चिटिनिस के विचार - आप दोनों ने विद्यार्थी अनुशासनहीनता की परिभाषा इस प्रकार दी है, ''विद्यार्थी अनुशासनहीनता से अभिप्राय शिक्षण संस्थाओं के नियमों, विधि-विधानों एवं परम्पराओं के प्रति अवज्ञा करना एवं उसका पालन नहीं करना है।''

लिप्सेट के अनुसार जो युवा जितने अधिक समय तक महाविद्यालय में रहेगा उसके छात्र आन्दोलन में हिस्सा लेने की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी।

कुछ समाजविदों तथा शिक्षाशास्त्रियों का मानना है कि परिवार का नियंत्रण युवा पीढ़ी पर जितना शिथिल तथा कमजोर होगा उनके अनुशासनहीन होने की सम्भावना भी उतनी ही अधिक होगी।

1.5 युवा वर्ग

युवा वर्ग सभी कालों और सभी स्थानों पर समाज का एक गतिशील व प्रगतिशील घटनक होता है । विश्व इतिहास में इस बात के पर्याप्त प्रमाण है कि युवा अनेक

राष्ट्रों के भाग्य विधाता व व्यवस्थापक रहे हैं। सभी कालों में सभ्यता की उत्पत्ति युवाओं के जोखिम, साहस, कल्पना व त्याग में परिलक्षित होती है। युवा निश्चित रूप से शक्ति, आदर्श, बेचैनी (अस्थिरता), निश्चय और त्याग का प्रतीक एवं मूर्त रूप है। ''युवा वास्तव में उत्साह और सर्वांगीण क्रियाओं के सम्पादन की क्षमता से परिपूर्ण है जो ऊर्जा के उपयोग अथवा अभिव्यक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।''

रामचन्द्र उपाध्याय ने लिखा है कि हिन्दुस्तान की परम्पराएं और जीवन के नजरिये को देखकर, यह भविष्यवाणी बड़ी आसानी से की जा सकती है कि इस देश में यदि क्रान्ति सम्भव है तो युवा क्रान्ति । आज इस देश के कोने-कोने से हमारे युवक वर्ग में जो असीम असन्तोष, निराशा व तनाव एवं उसी के फलस्वरूप युवा आन्दोलन देखने को मिल रहा है वह सम्भवतः उसी क्रान्ति की पूर्व सूचना है और ऐसा क्यों न हो ? आजादी मिले 55 वर्ष के बाद भी जब युवा वर्ग को जीवित रहने का एक स्वस्थ आधार, अपने व्यक्तित्व को निखारने के लिए आवश्यक सुविधाएं और डिग्रियां प्राप्त करने के बाद भी रोजगार का कोई, ठिकाना प्राप्त नहीं हो सकता है तो उसमें असन्तोष व विद्रोह की आग भड़क उठना स्वाभाविक ही है।

1.5.1 युवाओं की स्थिति

अब वह जमाना नहीं रहा, जब युवा वर्ग आंख मूदकर अपने बड़े-बूढों का अनुसरण या अनुकरण मात्र ही करते थे। शिक्षा का विस्तार, यातायात और संचार के साधनों में उन्नति, युवा संगठन आदि के कारण अब युवा वर्ग केवल अपने अधिकारों के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु अपने चारों ओर की परिस्थितियों विशेषकर शिक्षा सम्बन्धी आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों व समस्याओं के सम्बन्ध में वह उत्तरोत्तर, सचेत होता जा रहा है। सम्भवताः ही उसे अपने लिए कुछ चीजों या अवस्थाओं की जरूरत होती है और जब वर्तमान परिस्थितियों में वह चीज उसे यूँ ही प्राप्त नहीं होती है तो उसे बाध्य

होकर उन्हें प्राप्त करने के लिए युवा वर्ग को क्रियात्मक कदम उठाना या आन्दोलन करना पड़ता है चाहे वह क्रियात्मक कदम राजनीतिक नेताओं या कुलपति का घेराव करना हो अथव जलूस और नारेबाजी हो अथवा हड़ताल और हत्याएं हों। वास्तव में युवा क्रियावाद वह आन्दोलनात्मक विचारधारा व कर्म पद्धति है जो युवा वर्ग में वर्तमान परिस्थितियों के प्रति असन्तोष, अपने भविष्य के सम्बन्ध में घोर निराशा और कुछ सीमा तक राजनीतिक पार्टियो द्वारा उन्हें गुमराह कर देने के फलस्वरूप पनपता है और जो अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अहिंसात्मक एवं हिंसात्मक दोनों ही तरीकों को अपनाते हैं। इसी से युवा क्रिया व वाद या छात्र अशान्ति व हिंसा की प्रकृति स्पष्ट है।

सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में युवाओं की स्थिति निम्नवत है -

1.5.1.1 शिक्षा के क्षेत्र में

शिक्षा के क्षेत्र में युवा क्रियावाद सबसे उग्र और स्पष्ट है जोकि इस देश के प्रत्येक प्रान्त के स्कूलों, कालेजो तथा विश्वविद्यालयों में हर सत्र में दाखिले के प्रश्न को लेकर प्रारम्भ होता है, छात्र संघ के चुनाव के समय उग्र स्तर पर पहुचता है, किसी प्रिन्सिपल या उप कुलपति या पुलिस की किसी अन्यायपूर्ण कार्यवाही या नीति के ही प्रश्न को लेकर हड़ताल, तोड-फोड़ आदि हिंसात्मक कार्यो में वल जाता है और सबसे आखिर में परीक्षाओं का बहिष्कार अथवा नकल करने से रोकने वाले शिक्षकों को धमकी या उनकी पिटाई के साथ युवा क्रियावाद अथवा आन्दोलन का एक सत्र समाप्त होता है। रामचन्द्र उपाध्याय ने ऐसी ही विभिन्न आन्दोलनात्मक घटनाओं व उनके कारणों का बड़ा रोचक वर्णन इस प्रकार प्रस्तुत किया है - काशी विश्वविद्यालय का आंदोलन कुछ छात्र नेताओं के निष्कासन को वापस करने के लिये हुआ, गोरखपुर विश्वविद्यालय का आन्दोलन शुरू में गोली चलने और उसके बाद पुलिस प्रवेश को लेकर हुआ, बिहार का आन्दोलन पुलिस जुल्म के कारण हुआ, लखनऊ का छात्र आन्दोलन कुछ स्थानीय मांगों को लेकर हुआ, कानपुर का आन्दोलन

कक्षाओं में छात्रों की संख्या बढ़ाने को लेकर हुआ, देवरिया में आन्दोलन अध्यापक की कोतवाल द्वारा पिटाई पर हुआ, फैजाबाद व पिथौरागढ़ में आन्दोलन पृथक विश्वविद्यालय खोलने के सवाल पर हुआ, इलाहाबाद में आन्दोलन एक छात्र नेता के निष्कासन के सवाल पर हुआ।

1.5.1.2 आर्थिक क्षेत्र में युवा

आर्थिक क्षेत्र में युवा आन्दोलन मुख्य रूप से रोजगार की समस्या को लेकर घटित होता है। अधिकांश युवक शिक्षा समाप्ति के बाद किसी न किसी नौकरी में लग जाना, अपने तथा परिवार के लिए आर्थिक सुरक्षा प्राप्त करना चाहता है।

1.5.1.3 राजनीतिक क्षेत्र में युवा

राजनीतिक क्षेत्र भी युवा से अछूता नहीं है। छात्रों के द्वारा राजनीतिक में सक्रिय भाग लेना आज एक आम घटना बन गई है। इसका उज्जवल दृष्टान्त आम चुनाव में कई छात्र नेताओं का विधानसभा तथा लोकसभा के सदस्य चुना जाना है। छात्रों के लिए अब चुनावों में खुलकर भाग लेने के प्रति झुकाव राजनीतिक दल के प्रत्याशी अपने पक्ष में छात्र नेताओं का समर्थन प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करते हैं और इन्हीं के द्वारा चुनाव प्रचार कार्य भी करते हैं और इन्हीं के द्वारा चुनाव प्रचार कार्य भी करते हैं। इतना नहीं, एक युवा वर्ग तो आज शासन के अन्दर प्रत्यक्ष रूप से घुस बैठा है और यह चाहता है कि वयोवृद्ध नेताओं को हटाकर स्वयं शासन की बागडोर को संभाल ले। उसका यह मत है कि वर्तमान परिस्थितियों को वे जितना अच्छी तरह से समझते हैं उतना और कोई नहीं। इसलिए शासन सत्ता उनको मिलनी चाहिए। इस दिशा में शासन के अन्दर और बाहर आज भारत के सभी राज्यों में तैयारियां चल रही हैं। इसी का बहुत ही उग्र रूप नक्सलवादी आन्दोलन के रूप में कुछ समय पहले तक पश्चिमी बंगाल में एक आतंक व अराजकता की सृष्टि कर लेने में

सफल हुआ था और भी पश्चिमी बंगाल है। इस आन्दोलन के सभी प्रमुख कार्यकर्ता युवक वर्ग के ही थे और ये लोग तोड़-फोड़, लूट-पाट और बड़े पैमाने में हत्याओं के माध्यम से एक राजनीतिक उथल-पुथल लाने के लिए सक्रिय है। राजनीतिक क्षेत्र में युवा आन्दोलन का एक अत्यन्त उग्र रूप वी.पी. सरकार द्वारा 07 अगस्त 1990 को मण्डल आयोग की सिफारिशों को लागू करने के तुरन्त बाद देखने को मिला।

1.5.1.4 सार्वजनिक क्षेत्र में युवा

सार्वजनिक सभाओं, संगीत समारोह, कवि सम्मेलनों, सिनेमाघरों तथा खेलकूद के मैदानों में अनेक क्रिया-कलापों के बारे में अक्सर सुनने को मिलता है। कहीं पर उन्हें प्रवेश का उचित अधिकार नहीं मिला और कहीं पर उन्हें टिकट न मिलने की शिकायत हैं, कहीं पुलिस अफसरों द्वारा उन पर अत्याचार की घटना है तो कहीं सिनेमा या खेलकूद के टिकटों का ब्लैकमेल किये जाने के विरूद्ध उनकी शिकायत हैं पर केवल शिकायत करने तक ही उनका क्रियावाद समाप्त नहीं हो जाता है, शिकायत के साथ ही साथ हुल्लड़ मचाया जाता है जलूस निकाले जाते हैं, नारे लगाए जाते हैं, विरोध सभाएं होती हैं, सिनेमा के मैनेजर को पीटा जाता है अथवा सिनेमाघर में आग लगा दी जाती है, खेल के मैदान के फर्नीचर को तोड़ा जाता है और यदि पुलिस उनके इस कार्यो की रोकथाम करने आती है तो ईंटों, पत्थरों तथा सोड़े की बोतलों से उनका स्वागत किया जाता है। लखनऊ, इलाहाबाद, दिल्ली, बनारस, कलकत्ता, कानपुर, चेन्नई, मुम्बई आदि सभी प्रमुख नगरों में इस प्रकार की कितनी ही घटनाएं अक्सर होती रहती हैं।

1.5.2 युवाओं की समस्याएं

युवा वर्ग भी सम्पूर्ण समाज व्यवस्था का एक अंग हैं और इसीलिए युवा क्रियावाद भी उस समाज व्यवस्था की वर्नमान परिस्थितियों का परिणाम है। भारत में कुछ

वर्तमान सामाजिक परिस्थितियां युवाओं की समस्याओं को बढ़ावा देती हैं। वे परिस्थितियां या कारक निम्न हैं :-

1.5.1.2 आर्थिक असमानता एवं प्रतिस्पर्द्धा

समाजवादी की ओर बढ़ने का प्रयत्न किए जाने पर भी आधारभूत रूप में भारत में पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था की ही प्रधानता है। फलतः इस देश में आर्थिक असमानताएं बहुत अधिक हैं। आज के युवा वर्ग इस असमानता का स्वयं ही शिकार है और इसके पंजे से छुटकारा पाने के लिए वह कई ढंग से छटपटाता है। यहीं युवा असंन्तोष व आन्दोलन का श्रीगणेश होता है। इतना ही नहीं, आज हर क्षेत्र में गला काट व अनैतिक प्रतिस्पर्द्धा का बोलबाला है। दूसरी ओर हमारी शिक्षा इतनी अव्यवहारिक है कि अधिकांश युवक इस प्रतिस्पर्धा मे जूझ नहीं पाते हैं। फलतः उसमें तनाव उत्पन्न होता है। वे एक तरह से चिढ़कर आन्दोलनात्मक कार्यवाही को ही चुन लेते हैं।

1.5.2.2 भयंकर बेराजगारी तथा मंहगाई

भारत में बेरोजगारी की समस्या दिन-प्रतिदिन गम्भीर होती जा रही है। सबसे दयनीय स्थिति है उच्च शिक्षा प्राप्त व कुशल शिक्षित बेराजगारों की । जब शिक्षा, सामर्थ्य और इच्छा तीनों रहते हुए भी देश के असंख्य युवकों को काम करने का अवसर नहीं मिलता तो आन्दोलनात्मक कदम उठाने के अलावा उनके सामने दूसरा विकल्प ही क्या रह जाता है ? यूँ भी खाली मस्तिष्क शैतान का घर होता है, उस पर जब भीषण मंहगाई का चाबुक उस शैतान पर पड़ता है तो वह करो या मरो का बीड़ा भी उठा लेता है। हमें डिग्री नहीं, रोजी-रोटी चाहिए, बेकारों को काम दो या बेकारी का दाम दो, का उनका नारा और उस दिशा में उनके द्वारा उग्र प्रदर्शन आदि इसी परिस्थिति का परिणाम होता है।

1.5.2.3 उचित शिक्षा व्यवस्था अभाव

अंग्रेजो से विरासत में प्राप्त, हमारी आज की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था ही दोषपूर्ण और अनुचित है। वह हमारी वर्तमान आवश्यकताओं व उद्देश्यों को पूरा करने में पूर्णतया असफल है। फिर भी उसी व्यवस्था को हम जबरजस्ती घसीट रहे हैं। फलतः हमारे युवक वर्ग को केवल किताबी ज्ञान ही प्राप्त हो पाता है और शायद वह भी नहीं, विशेषकर उस अवस्था में जबकि दोषपूर्ण परीक्षा पद्धति के अन्तर्गत वह नकल करके पास होता है अथवा होना चाहता है। आज की शिक्षा उन्हें वास्तविक परिस्थितियों का सामना करने लायक अथवा रोजी-रोटी कमाने के मामले में स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने योग्य नहीं बनाती है। इसका स्वाभाविक परिणाम उनमें असन्तोष व निराशा की भावना का पनपना ही होता है। लक्ष्यहीन शिक्षा आज के युवा वर्ग को भी लक्ष्य भ्रष्ट कर देती है। साथ इस शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार की नीति भी कुछ अजीब व अनिश्चित है। वह छात्रों की वास्तविक समस्याओं को न तो समझते हैं और न ही समझने की कोशिश करते हैं। इससे भी असन्तोष व आन्दोलन को बढ़ावा मिलता है।

1.5.2.4 असुरक्षा की भावना

आज के नवयुवकों में एक अजीब असुरक्षा की भावना घर कर गई है। मनोवैज्ञानिक तौर पर वह किसी पर भरोसा नहीं कर पाता है - न तो दोस्तों पर, न शिक्षक पर और न ही परिवार या समाज पर । वह अपने जीवन की दिशा व लक्ष्यों को सुनिश्चित नहीं कर पाता है, वह नहीं जानता है कि शिक्षा प्राप्त करने के बाद उसे वास्तव में क्या करना है। उसके लिए स्वयं उसका ही भविष्य अन्धकारमय दिखता है। अतः वह एक मानसिक तनाव की स्थिति में होता है जोकि उसे उग्र और विघटनकारी कार्यो की ओर खींच ले जाता है।

1.5.2.5 औद्योगीकरण व नगरीकरण

औद्योगीकरण व नगरीकरण की प्रक्रिया ने केवल शहरों के ही नहीं, अपितु गांव के युवक वर्ग को भी प्रभावित किया है। नगरीकरण व औद्योगीकरण ने यदि एक ओर शिक्षा व नौकरी की सुविधाओं को बढ़ाया है तो दूसरी ओर ग्राम उद्योगों को नष्ट भी किया है। इन दोनों ही कारणों से गांव के अनेक युवक शहर में आकर बस जाते हैं और बेरोजगारी की समस्या को बढ़ाते हैं । साथ ही नगरीकरण व औद्योगीकरण ने संयुक्त परिवार को विघटित किया, परिवार के महत्व को कम किया, व्यापारिक मनोरंजन को पनपाकर युवा वर्ग के दिल व दिमाग को दूषित किया, बुरी आवास व्यवस्था को उत्पन्न कर शारीरिक व नैतिक पतन का रास्ता साफ किया और नगर के अन्य प्रलोभनों ने युवकों को अपनी बांहो में समेटकर भ्रष्ट किया। परिणाम जो कुछ हुआ असन्तोष व आन्दोलन के रूप में हमारे सामने है।

1.5.2.6 पारिवारिक नियंत्रण का ह्रास

व्यक्तिवादी मनोभाव, रोजी-रोटी की विकट समस्या, बेरोजगारी, महंगाई आदि ने आज परिवार के नियंत्रणात्मक प्रभाव को बहुत दूर कर दिया क्योंकि केवल पिता को ही नहीं, आज माता को भी पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये नौकरी करनी पड़ती है। फलतः बच्चों पर उनका नियंत्रण ढीला पड़ जाता है। साथ ही आज युवा वर्ग की अधिकांश आवश्कताओं की पूर्ति परिवार के द्वारा नहीं अपितु बाहरी संस्थाओं द्वारा होती है। इस कारण उसका अधिकतर समय परिवार से बाहर ही व्यतीत होता है जिसके कारण उसके लिए परिवार का महत्व व नियंत्रण अपने आप ही घट जाता है। जब परिवार के बड़े-बूढ़े, युवा सदस्यों पर उचित निगरानी व नियंत्रण नहीं रख पाते हैं और न ही उनका सही मार्ग निर्देशन करते हैं, तो उसके लिए युवा अवस्था के उग्र बहाव में बह जाना भी स्वाभाविक है।

1.5.2.7 उचित मनोरंजन के साधनों का अभाव

हमारा समाज युवा वर्ग के लिए उचित मनोरंजन की भी व्यवस्था नही करता। यह बात विशेषकर औद्योगिक नगरों पर लागू होती है जहां कि भूमि के अत्यन्त अभाव के कारण पार्क, खेलकूद के मैदान, सार्वजनिक मनोरंजन के अभाव में आज का युवा वर्ग मनोरंजन का कोई न कोई जोशीला, जोखिम युक्त व उमंग भरा उपाय चुन लेता है। हम निश्चित रूप से जानते हैं कि जलूस, नारेबाजी, प्रदर्शन, तोडफोड, हड़ताल आदि कार्यवाहियों में अनेक युवक-युवतियां केवल मनोरंजन या मखौल के लिए ही भाग लेते हैं।

1.5.2.8 राजनीतिक प्रभाव

आज के युवा वर्ग में राजनीतिक जागरूकता तेजी से बढ़ती जा रही है इसीलिए वह खुलकर राजनीति में भाग भी ले रहा है। फलतः देश में आज युवा नेतृत्व का विकास हो रहा है। यह कालेज के छात्रसंघ का चुनाव लड़ने और उस चुनाव को अच्छे बुरे किसी भी तरीके से जीतने से प्रारम्भ होता है और फिर लोकसभा या विधानसभा के चुनाव की ओर आगे बढ़ाता है। इसके प्रत्येक स्तर पर युवा आन्दोलन ही सामने आता है। इसके लिए कुछ राजनीतिक दल व नेता भी समान रूप से उत्तरदायी होते हैं जोकि अपने दलगत व व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति के लिए युवकों को भड़काते व काम में लगाते रहते है। इन नेताओं के कहने में आकर भी युवा वर्ग जुलूस, प्रदर्शन, तोड़फोड़, हड़ताल आदि करता है।

1.5.1.9 सरकार की गलत नीति

सरकार की गलत नीति के कारण भी युवा असन्तोष व आन्दोलन को बढ़ावा मिलता है। उदाहरणार्थ, उत्तर प्रदेश में चौ0 चरण सिंह मंत्रिमण्डल ने छात्रसंघ की सदस्यता को ऐच्छिक बनाने के लिए कानून बनाया तो उसके विरोध में काला कानून वापस

लो नारे के साथ छात्र आन्दोलन की आग भड़क उठी। इसी प्रकार तीन विषय पढ़ाए जाएं या चार, ऐसे कानूनों द्वारा जानबूझकर सरकारी तौर पर आन्दोलन कराया जाता है। केवल इतना ही नहीं जब सरकार द्वारा किसी ऐसे व्यक्ति को विश्वविद्यालय का कुलपति बना दिया जाता है जो स्वयं से रिटायर हो चुका है और जो आजीवन शिक्षा मित्र से दूर रहा है तो ये लोग विश्वविद्यालयों में पहुँचते ही अंग्रेजी का प्रयोग, चाटुकारिता को बढ़ावा तथा तमाम सही निर्णयों को रद्द कर अनाप-शनाप निर्णय लेना आरम्भ कर देते हैं तो विश्वविद्यालय के छात्र आसानी से बेकार को काम दो कहना भूलकर कुलपति की तानाशाही नहीं चलेगी कहना प्रारम्भ कर देते हैं।

1.5.2.10 गलत नेतृत्व

आज के युवा क्रियावाद या आन्दोलन का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि युवा वर्ग को उचित नेतृत्व नहीं मिल रहा है। पिछले कई वर्षो से विश्वविद्यालयों का नेतृत्व चिन्तनशील समझदार युवा से वंचित होता जा रहा है, क्योंकि यह नेतृत्व उसी के पास रहेगा जो छात्रसंघ का चुनाव जीतकर आए और छात्रसंघ का चुनाव जीतकर आ सकता है जिसके पास धन संग्रह की कला हो, जिसके पास पर्याप्त शक्ति हो, जिसकी जाति बिरादरी की अच्छी खासी तादाद हो और जो वाणी को तेज चलाने की कला जानता हो, भले कर्म से उसका कोई मतलब न हो। ऐसे छात्र नेता युवा वर्ग केवल गुमराह ही करते हैं और अपने व्यक्तिगत व दलगत स्वार्थ सिद्ध के लिए युवकों को प्रदर्शन, तोडफोड़, मारकाट, हड़ताल आदि के लिए भड़काते रहते हैं।

1.6 वृद्धजन

बचपन की चंचलता, यौवन की चपलता और प्रौढ़ता के गाम्भीर्य से प्राप्त अनुभव वृद्धावस्था को जीवन की पूर्णता पर पहुँचा कर उसे भविष्य का आधार बना देते हैं।

अपने वृद्धों को सामर्थ्यहीन मानना न केवल अनुचित है बल्कि समाज के प्रति अन्याय भी है।

भारत में विगत पांच दशकों में बुजुर्गो को निरन्तर हाशिए पर धकेलने का काम परिलक्षित हुआ है। वर्तमान में वृद्धों एवं युवा पीढ़ी के बीच संवादहीनता की खाई इतनी गहरी हो गई है कि वृद्धों को अनावश्यक तनाव के दंश को सहना पड़ता है।

समृद्धि की आधुनिक परिभाषा से नैतिक, सैद्धान्तिक वैचारिक और मूल्यगत समृद्धि की अवधारणाएं तेजी से नष्ट होती जा रही हैं। मानव की समृद्धि का एक ही अर्थ रह गया है - भौतिक सम्पन्नता । बुजुर्गो के अनुभव "स्क्रैप" कहकर खारिज किया जा रहा है। वे आउटडेटेड और ओल्ड फैशंड जैसे सम्बोधनों से सम्बोधित किये जा रहे है। समाज में नयी सोंच को अवलोकित करने से प्रतीत होता है कि वृद्धावस्था मानों जीवन का अंग ही नहीं है । उसे तो सुख-मृत्यु के हाथों दे देना चाहिए।

पारिवारिक संबंधो के खास ताने-बाने से संरचित भारतीय समाज में भी उपेक्षित स्थिति निर्मित हो रही है।

युग तेजी से करवट बदल रहा है। परिणामतः जीवन मूल्यों में निरन्तर गिरावट आती जा रही है। भौतिक उन्नति वरदान से अधिक अभिशाप सिद्ध हो रही है। भारतीय संस्कृति के मूल आधार संयुक्त परिवार आज टूटते चले जा रहे हैं। जहां पर भी संयुक्त परिवार विद्यमान है वहाँ का वातावरण वृद्धों की मानसिकता एवं शारीरिक स्थिति के अनुकूल नहीं है। धनोपार्जन की तलाश और शहरी जीवन के मोह में आज की युवा पीढ़ी प्रायः नगरों की ओर आकर्षित हो रही है। फलस्वरूप वृद्धों के प्रति उदासीनता बढ़ रही है, उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण ने वृद्धों एवं असमर्थो के लिए गहन समस्या उत्पन्न कर दी है।

चिकित्सा पद्धति में उन्नति के साथ-साथ औसत आयु के स्तर में भी वृद्धि हुई है। परिणामतः वृद्धों की संख्या में वृद्धि हो रही है। भारतीय संस्कृति में वृद्ध माता-पिता एवं परिवार में सभी वृद्धजनों को भगवान का पद दिया जाता है किन्तु आज के प्रगतिशील

युग में हर क्षण बदलते सामाजिक परिवेश में नई पीढ़ी से ऐसी आशा करना ही दुराशा मात्र है। नई पीढ़ी अपने पैरो पर खड़े होते ही वृद्धजनों को अनुपयोगी और भार स्वरूप समझने लगती है। छोटी उम्र से ही उनके अनुशासन में रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता। जिन वृद्ध माता-पिता के हाथों में आर्थिक संसाधन केन्द्रित है वहाँ निहित स्वार्थो के कारण वातावरण कुछ भिन्न है। इसके विपरीत जो माता-पिता सन्तान पर आश्रित हैं उनके प्रति श्रद्धा सत्कार तो दूर की बात है प्रायः कर्तव्य की भावना भी दृष्टिगोचर नहीं होती है।

उम्र बढोत्तरी एक प्राकृतिक एवं अनुलोम (पीछे न जाने वाली) जीवन पद्धति है। इस तथ्य की वास्तविकता अक्सर भ्रामक होती है। बहुत से वृद्ध जो वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहे हैं, ऐसा दृष्टिकोण अपनाने को प्रेरित होते हैं, जो उम्र बढोत्तरी या वृद्धावस्था के क्रम को गतिशीलता प्रदान कर सकता है और बुजुर्ग या वृद्धों को हाशिए में डाल सकता है।

वृद्धावस्था प्रायः थकान, कार्यशीलता में कमी, रोगों की प्रतिरोधक क्षमता के ह्रास से सम्बन्धित है। अक्षमताएं जो दैनिक जीवन के कार्य कलापों को दुर्बल बनाती हैं वृद्धावस्था में सामान्य हो जाती हैं। इनके चिन्ह रोग नहीं माने जाते हैं फिर भी ये संयुक्त रूप से वृद्धावस्था निर्मित करते हैं।

यद्यपि वृद्धावस्था विभिन्न आयामों वाली पद्धति है। वस्तुतः इसके कारण एवं परिणाम समझने के उद्देश्य से इस पर पड़ने वाले जैविक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं जनांनकिकीय कारकों की चर्चा की जा सकती है।

डेमोग्राफिक अर्थ में उम्र बढ़ोत्तरी एक जैविक पद्धति है जो गतिमान एवं निरन्तरता लिए होती है। काल क्रमिक उम्र जैविक और मनोवैज्ञानिक उम्र की नाप नहीं करती है। वृद्धावस्थ कब प्रारम्भ होती है उस उम्र को निश्चित नहीं किया जा सकता है। प्रशासनिक उद्देश्यों जैसा सेवानिवृत्ति का निश्चयकरण, पेंशन योग्य उम्र का निर्धारण तो होता है किन्तु इसका सम्बन्ध जैविक मनोवैज्ञानिक उम्र से नहीं होता है। एक देश के श्रम बल वाली अधिक अवस्था की जनसंख्या का बड़ा हिस्सा एक आर्थिक बोझ का प्रतिनिधित्व

करता है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत सेवाएं उपलब्ध कराने में यह बड़ी आवश्यकताएं उत्पन्न करता है, विशेषकर चिकित्सीय व सामाजिक क्षेत्र में उन लोगों के लिए जो वृद्धावस्था अथवा उम्र बढ़ोत्तरी के कारण क्षमताओं की दशाओं के कारण दुर्बल हो गए हैं।

वृद्धावस्था को समझने में दो तथ्य महत्वपूर्ण होतें हैं जो परस्पर भिन्न होते हुए भी पारस्परिक रूप से सम्बन्धित होते हैं। वे हैं :-

1. शारीरिक उम्र एवं
2. सामाजिक उम्र

शारीरिक उम्र एक व्यक्ति की जैविक दशाओं में परिवर्तन जैसे- बालों के रंग में परिवर्तन, दाँत गिरना, दृष्टि-दोष उत्पन्न होना या कमजोर होना, व्यक्तिगत आवश्यकताओं में ध्यानाकर्षण की स्थिति, शारीरिक व्याधियाँ या रोग आदि से सम्बन्धित हैं।

दूसरा तथ्य सामाजिक उम्र बढ़ोत्तरी जैसे - सामाजिक सुरक्षा, किसी संगठित क्षेत्र में सेवा से निवृत्ति डेमोग्राफिक वर्गीकरण, समाज और व्यक्ति पर इसके प्रभाव आदि से सम्वन्धित प्रशासनिक आधार पर निश्चित की जाती है।

उपर्युक्त दो तथ्य वृद्धावस्था को समझने के महत्वपूर्ण आधार हैं, फिर भी इन तथ्यों के आधार पर वृद्धावस्था को परिभाषित करना कठिन है। किसी ने एक बार कहा था कि मेरे लिए बूढ़ी उम्र मुझसे पन्द्रह वर्ष अधिक है, अर्थात जो मेरी उम्र से पन्द्रह वर्ष बड़ा है, वह बूढ़ा है। यही कारण है कि Tean Ager युवक-युवतियाँ (13 से 19 के मध्य) 30 वर्ष की उम्र वालों को बूढ़ा या बूढ़ी समझते हैं। जो 45 वर्ष के उम्र के है वे 60 वर्ष की उम्र वालों को बूढ़ा समझते हैं। यहाँ तक कि वृद्ध लोग बमुश्किल महसूस करते हैं कि वे बूढ़े या वृद्ध हैं। व्यावहारिक रूप से वृद्धावस्था का विभाजन करने वाली रेखा सेवानिवृत्ति की उम्र को माना जाता है, जो सेवानिवृत्ति हो जाते हैं उन्हें वृद्धों के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ उन्हें वृद्ध नागरिक के रूप में परिभाषित करता है जो 65 वर्ष की उम्र के ऊपर हैं क्योंकि इस उम्र के बाद शारीरिक अंगों की कार्यक्षमता में कमी आने लगती है अर्थात शारीरिक अक्षमता प्रकट होने लगती है।

अधिकांश पश्चिमी राष्ट्रों ने 65 वर्ष की उम्र को सेवानिवृत्ति के लिए निर्धारित किया है। जहाँ तक भारत का प्रश्न है, सेवानिवृत्ति की उम्र 60 वर्ष से 62 वर्ष के मध्य रखी गयी है।

भारत में जनगणात्मक तथ्यों के आधार पर 30-49 व 70 वर्ष से अधिक उम्र को वृद्धावस्था के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में 30-49 वर्ष आयु समूह से अधिक उम्र के लोगों को वृद्ध मानते हुए अध्ययन के लिए चुना गया है। 30-49 वर्ष आयु समूह से अधिक उम्र के नागरिकों को पाँच आयु समूहों में (30-49, 50-69 तथा 70 वर्ष से अधिक) बाँटा गया है।

हम जानते है कि सेवानिवृत्ति की आयु, व्यवसाय, व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक संगठनों, शासकीय संस्थाओं आदि में भिन्न-भिन्न होती है। सेवानिवृत्ति की आयु राजनीतिज्ञों पर लागू नहीं होती क्योंकि वे कभी भी सेवानिवृत्ति नहीं होते । 80 वर्ष की आयु में भी वे पांच वर्षीय शासनकाल के लिए मंत्री पद के योग्य हीं माने जाते हैं। किन्तु यह शर्त किसी अन्य संगठन के कर्मी पर लागू नहीं हो सकती है। इसके अतिरिक्त ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो सक्रियता की स्थिति में होने के बावजूद भी निष्क्रिय होते हैं। संभवतः इसी कारण से जब वे सेवानिवृत्ति होते है तब वे दूसरों की अपेक्षा अधिक वृद्ध होते हैं।

ऐसी स्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि सेवानिवृत्ति व्यक्ति के वृद्ध होने की कसौटी होती है। यदि वह सेवानिवृत्ति नहीं होता है तो उसके कई कारण हो सकते हैं। उनमें से एक विभागीय आलेखों में गलत उम्र दर्शाता है जिससे वह सेवानिवृत्ति की आयु प्राप्त करने के पश्चात भी सेवारत रहता है।

इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि वृद्ध या बुजुर्ग के लिए हमारी परिभाषा में विशिष्ट लक्षण की कमी होती है।

1.6.1 वृद्धावस्था : एक विवेचन

यह शाश्वत सत्य है कि वृद्धावस्था मानव जीवन की संध्या है जिसकी स्थिति देश दुनिया में डूबते हुए सूर्य के समान है और यह जीवन का अनिवार्य क्रम है जिसने भी मानव योनि में जन्म लिया है उसे देर सबेर वृद्धावस्था का शिकार होना ही पड़ता है। प्रश्न यह उठता है कि वृद्ध कौन है और वृद्ध का क्या आशय है हालांकि आज तक इसके लिए कोई निश्चित आयु निर्धारित नहीं की गयी है लेकिन आमतौर पर 60 वर्ष और उसके बाद के व्यक्ति को बुजुर्ग या वृद्ध माना जाता है। बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में मानव की औसत आयु में काफी वृद्धि हुई है जिसका मुख्य कारण है :-

चिकित्सा जगत में अनेकानेक नए अविष्कार, स्वास्थ्य के लिए विशेष जागरूकता तथा विभिन्न राष्ट्रों की सरकारों व विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा किए गए अनेक प्रयत्न ।

वैज्ञानिक तथ्य स्पष्ट करते हैं कि विगत एक शताब्दी में मानव की औसत आयु में लगभग 30 वर्षो की वृद्धि हुई है। मानव वास्तव में लम्बी जिंदगी जीना चाहते हैं।

जहाँ तक वृद्ध की परिभाषा करने का प्रश्न है तो शब्द कोष के अनुसार वृद्ध का शाब्दिक अर्थ होता है - वृद्धि से सम्पन्न, बुद्धि से युक्त, ठीक उसी प्रकार से जैसे शुद्ध का अर्थ होता है शुद्धि से सम्पन्न और बुद्ध का अर्थ होता है बुद्धि से सम्पन्न। यह बुद्धि आयु की कमी भी हो सकती है और विद्या, धर्म अथवा अनुभव की भी। इसलिए जिस व्यक्ति में आयु विद्या धर्म अथवा अनुभव की वृद्धि हो, वहीं वृद्ध है।

1.6.2 वृद्धावस्था के लक्षण

वृद्धावस्था में मनुष्य में प्रमुख परिवर्तन शारीरिक स्थिति में आता है। उम्र बढ़ने के साथ-साथ व्यक्ति की मांसपेशियों रक्त प्रवाह, श्वास प्रक्रिया और हड्डियों में दुर्बलता आने लगती है जिससे कार्यक्षमता घटने लगती है, यह क्षीणतांए- आँख, कान, नीद, स्वाद, उठने-बैठने आदि के रूप में दृष्टव्य होती है। मांसपेशियों में दुर्बलता आने के कारण कार्य करने में थकावट शीघ्र हो जाती है। वृद्धावस्था में मोतियाबिन्द, मधुमेह, ह्रदयरोग, पक्षाघात, रक्तचाप का बढ़ना आदि रोग गंभीर रूप धारण कर लेते हैं। शरीर के विभिन्न जोड़ों में दर्द की समस्या उत्पन्न हो जाती है। शारीरिक व्याधियों के साथ-साथ वृद्धों में मानसिक परिवर्तन तीव्र हो जाते हैं। जिनका सीधा प्रभाव उनके पारिवारिक परिवेश पर पड़ता है।

1.6.3 वृद्धावस्था की उपादेयता

वृद्धावस्था का सामर्थ्य अत्यन्त विशिष्ट होता है और उसका उपयोग परिवार समाज और राष्ट्र के हित में युवा पीढ़ी बखूबी कर सकती है। प्रकृति में किसी एक अवस्था में किसी एक गुण का क्षरण होता है तो दूसरे का उदय। जीवन की कोई अवस्था प्राकृतिक विशेषताओं से रिक्त नहीं होती।

वृद्धों के सामर्थ्य की तीन विशेषताएं होती है।

1. अनुभव
2. धैर्य
3. प्रदाय

उपर्युक्त में सबसे बड़ी विशेषता प्रदायिनी शक्ति होती है। बुजुर्ग अपनी संतान को अपना सब कुछ देना चाहते हैं युवा पीढ़ी पर निर्भर करता है कि वे संतान के रूप में उनसे अपने लिए कितना हासिल करती हैं।

भारतीय समाज के मध्यम वर्ग में 22-23 वर्ष संतान अपने माता-पिता पर आश्रित होती है । यदि कोई लम्बी उम्र तक जीवित रहता है तो उसकी आत्मनिर्भरता का कालखण्ड मात्र 35-36 वर्ष रहता है। उर्बरित 44 वर्ष असहाय ही होता है। चाहे वह असहायता शारीरिक हो अथवा आर्थिक । मानव जीवन की आधी सदी सामर्थ्य विहीन नहीं हो सकती, उसके जीवन की चारों अवस्थाएं समाज का ताना-बाना बुनती हैं।

1. शैशव
2. तरूणाई
3. प्रौढ़ावस्था
4. वृद्धावस्था

इन सभी में मानव सामर्थ्यवान रहता है। सामर्थ्य प्रत्येक अवस्था में नए रूप में अभिव्यक्त होता है। शैशव में आकर्षण होता है यही उसका सामर्थ्य है। तरूणाई ज्ञान को कर्मठता के माध्यम से प्रकट होता है। प्रौढ़ावस्था का सामर्थ्य उसकी योजनाकारिता होती है और वृद्धावस्था मार्ग दर्शन की क्षमता का सामर्थ्य रखती हैं।

वृद्धता का लक्षण मात्र आयु का ही अधिक हो जाना नहीं, बल्कि एक पूर्ण वृद्ध के परिवेश में आयु वृद्ध, ज्ञान वृद्ध और अनुभव वृद्ध, इन तीनों का संयोग होता है।

अनादि काल से अपनी विजय यात्रा पर निकला हुआ मानव ज्ञान, विज्ञान, धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति और भाषा के जिन नए ध्रुवों पर अपना झण्डा फहराता आया है, समाज व्यवस्था राजनीति और अर्थ व्यवस्था से सम्बन्धित जिन वैज्ञानिक नियमों का अविष्कार करता आया है उन सबको आगामी पीढ़ी तक सम्प्रेषण का कार्य मौलिक और लिखित दोनों ही रूपों में समाज के वृद्ध लोग ही करते रहे हैं। लाखों, करोड़ों, वर्षो से संचित ज्ञान और अनुभव को भी उसी सहजता से वह अपने माता-पिता, बड़े-बजुर्गो एवं गुरूजनों से प्राप्त कर लेता है।

युग के हर व्यक्ति को अपना प्रयोग और अपना-अपना अविष्कार नए सिरे से करना पड़ता तो हम आज भी जंगलों और पर्वतों की गुफाओं में रहकर वन्य जीवन बिताने को बाध्य होते । आज शक्ति और सामर्थ्य के जिस उच्च शिखर पर आरूढ़ होकर, हम गर्व का अनुभव करते हैं उस ऊँचाई तक हमें पहुँचाने का श्रेय हमारे वृद्ध वर्ग को ही है।

वृद्धावस्था की किसी भी विवेचना में यह ध्यान आवश्यक है कि शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों में उम्र वृद्धि की पद्धति में विस्तृत व्यक्तिगत भिन्नताएं होती हैं। उम्र वृद्धि कई ढंगों से प्रभावित होती हैं। जिनमें कुछ पूरी तरह से समझ में नहीं आती है। परिणामतः कुछ लोग 65 वर्ष की उम्र से भी औसतन 50 वर्ष की उम्र में ही अक्षम एवं मुरझाए हुए से प्रतीत होने लगते हैं।

वृद्धावस्था, सेवानिवृत्ति की आयु अथवा पेंशन आयु की सामान्यतया पर्यायवाची मानी जाती है । चूंकि सेवानिवृत्ति की आयु भी भिन्न-भिन्न होती है। अतः यह स्वीकार करना तर्क पूर्ण होगा कि व्यक्ति 55 वर्ष के बाद वृद्ध हो जाता है।

1.6.4 वृद्धों की जनसंख्या

चिकित्सा विकास के कारण मृत्युदर की कमी और औसत जीवन के लम्बा होने के परिणामस्वरूप वृद्ध व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। विश्व में लगभग 600 करोड़ की आबादी में 58 करोड़ लोगों की उम्र 65 वर्ष या इससे अधिक है। इनकी संख्या में वृद्धि लगातार होती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार 20 वर्ष बाद बुजुर्गो की संख्या 100 करोड़ हो जाएगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार वृद्ध व्यक्तियों का अनुपात विश्व जनसंख्या के प्रतिशत के अनुरूप ठोस रूप में बढ़ेगा। एक अध्ययन के अनुसार पूरे विश्व में 1950 के बाद व्यक्ति की औसत आयु में 20 वर्ष की वृद्धि हुई है। 1970 में 60 वर्ष से

अधिक के लोगों की संख्या 30 करोड़ 40 लाख से अधिक थी जो उच्च प्रतिव्यक्ति आय के देशों में वर्ष 2000 तक 13 और इससे ऊपर होगा।

यह प्रतिशत सामान्य आय वर्ग वाले देशों में 10 होगा। जो वृद्ध व्यक्तियों के उच्च अनुपात वाले राष्ट्रों के लिए गम्भीर समस्या होगी। एक सर्वेक्षण के अनुसार यूरोप दुनिया का सबसे बूढ़ा क्षेत्र है यहाँ वृद्धों की संख्या कुल जनसंख्या का 5वॉ भाग है, उत्तरी अमेरिका, पूर्वी एशिया, लैटिन अमरीका और दक्षिणी एशिया में बुजुर्गो की संख्या क्रमशः 23, 12 और 10 प्रतिशत होने का अनुमान है। वर्ष 2020 में जापान 31 प्रतिशत बुजुर्गो के साथ दुनिया का सबसे बूढ़ा राष्ट्र होगा। इसके बाद इटली, ग्रीस और स्वीटजनरलैण्ड का स्थान होगा। वर्तमान में 20 विकासशील राष्ट्र ऐसे हैं जहां औसत आयु 72 वर्ष से अधिक है। कोस्टारिका, कोरिया और मलेशिया इसी श्रेणी के राष्ट्र हैं।

1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ था उस समय देश में औसत आयु 32 वर्ष थी , वर्तमान में यह 64 वर्ष है। इन 56 वर्षो में वृद्धों की संख्या में तीन गुना की बढ़ोत्तरी हुई है। वर्ष 2020 तक भारत में वृद्धों की जनसंख्या 14.10 करोड़ हो जाएगी।

हेल्पएज इण्डिया के एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में इस समय बुजुर्गो की संख्या 7 करोड़ 70 लाख के करीब है। देश में 100 साल से ऊपर की उम्र की आबादी भी दो लाख के करीब है।

इस समय वृद्ध लोगों की आबादी 7.6 करोड़ होने का अनुमान है। ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि 2030 ई0 में इनकी जनसंख्या 19.8 करोड़ हो जाएगी। भारत में वृद्ध लोगों को अब ''वरिष्ठ नागरिक'' अथवा ''सीनियर सिटिजन'' कहा जाने लगा है। भारत में एक ओर जहां वृद्धों की संख्या बड़ी तेजी से बढ़ रही है वही दूसरी ओर औद्योगीकरण, नगरीकरण, आधुनिकीकरण एवं पश्चिमीकरण से बच्चों में माँ-बाप से जोड़े रखने वाले पुराने संस्कारों की बजाय नई सोच उभरने के कारण वृद्धों की देखरेख हेतु

सम्बन्धित सरकारें विशेष ध्यान दे रही हैं। भारत में भी सरकार ने वृद्धों की देखरेख हेतु एक राष्ट्रीय नीति बनाई।

1.6.5 वृद्धों की समस्याएँ

वृद्धों को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वृद्ध पुरूषों एवं वृद्ध स्त्रियों की समस्याओें में भी अन्तर पाया जाता है। इनकी प्रमुख समस्याओं को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है -

1.6.5.1 पारिवारिक समस्याएं

वृद्धजनों की सबसे प्रमुख समस्या परिवार में उनके सामंजस्य की है। प्रायः यह देखने में आया है कि परिवार के ऐसी धारणा काफी सीमा तक व्याप्त है कि बड़े-बूढ़े अपने परिवारों से कटने लगे हैं। परिवार के सदस्यों द्वारा की जाने वाली उपेक्षा वृद्धजनों की अन्य समस्याओं को कई गुना बढ़ा देती है। अपने सभी होते हुए भी वृद्ध अपने आपको लाचार एवं बेवश समझने लगते हैं। जो वृद्ध महिलाएं घर के कामकाज में अपने आपको थोड़ा बहुत व्यस्त रखती है उनकी तो परिजन देखरेख करते हैं, परन्तु वृद्ध पुरूषों की परिवार में कोई विशेष भूमिका न होने के कारण उनकी उपेक्षा में काफी वृद्धि हुई है। वृद्धो की देखरेख उनके परिवार की दिये जाने वाले योगलाभ पर निर्भर करने लगी है। अनेक वृद्ध घर के बाहर के कामों में अपने परिवार की सहायता करते हैं। यह सहायता दूध व सब्जियाँ लाने , घर का अन्य सामान लाने, बिजली व पानी इत्यादि के बिल जमा करने तथा बीमें की किश्तें अदा करने के रूप में होती हैं। इन सबके बावजू वृद्धों को परिवार में वह सम्मान नहीं मिलता है जिसके वे हकदार होते हैं।

जैसे-जैसे भारत में संयुक्त परिवारों का विघटन होता जा रहा है, वृद्धों की पारिवारिक समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। देश की जनसंख्या के स्वरूप तथा संस्कृति में होने

वाले वृहद परिवर्तनों के परिणामस्वरूप वृद्धजनों को अपने परिजनों से वह सहयोग नहीं मिल पा रहा है जिसकी वे उनसे आशा करते हैं। आज अनेक ऐसे वृद्ध हैं जो अनाथाश्रमों जैसे वृद्ध संस्थाओं में रह रहे हैं तथा सन्तान होते हुए भी अपने आपको बिना सन्तान कहने हेतु विवश होते जा रहे हैं। उनके अपने बच्चे उसी शहर में होते हुए भी न तो उनसे मिलने आते हैं और न ही, उनके बारे में किसी प्रकार की चिन्ता करते हैं। ऐसे वृद्धजन "वृद्ध संस्थाओं" में जो खाने को मिल जाता है उसी से अपनी संतुष्टि कर लेते हैं। ऐसे अनेक वृद्धों में इस प्रकार की भावना विकसित होने लगती है कि सन्तान के होते हुए भी वे बिना सन्तान हैं।

1.6.5.2 स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ

वृद्धजनों की दूसरी समस्या उनके स्वास्थ्य से सम्बन्धित है। बुढ़ापे में इन्द्रियाँ कमजोर होने के कारण आंखों की नजर घट जाना, जोड़ों में दर्द होना, स्वाद और सूँघने की चेतना कम हो जाना तथा सुनने की शक्ति घट जाना ऐसे ही कुछ सामान्य रोग हैं जिनका शिकार अधिकतर वृद्ध हो जाते हैं। यदि कोई वृद्ध किसी गम्भीर रोग से पीड़ित हो जाता है तो परिजन पैसों की वजह से उसका उचित इलाज नहीं करवाते हैं। कई बार तो उन्हें डाक्टर के पास भी यह कहकर नहीं जाने दिया जाता है कि रोज-रोज फीस देने हेतु उनके पास पैसे नहीं है। स्वास्थ्य सुविधाओं में तो वृद्धि हुई है परन्तु उनका इतना अधिक व्यापारीकरण हो गया है कि अनेक चैरिटेबिल अस्पताल भी मरीजों की जेबें काटने में पीछे नहीं हैं। नर्सिंग होम वालों ने तो इसे एक होटल रूपी व्यवसाय ही बना लिया है। मरीजों से मुँह मांगा कमरों का किराया लिया जाता है तथा उन्हें भारी भरकम किराये वालें कमरों में रहने के लिए यह कहकर विवश किया जाता है कि जनरल वार्ड में तो कोई बिस्तर ही खाली नहीं है। ऐसी स्थिति में अनेक परिवार वृद्धों को उचित स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध नहीं करवा पा रहे हैं।

इसीलिए आए दिन की बीमारी से अनेक वृद्ध इतना ऊब जाते हैं कि वे जीवित रहना ही नहीं चाहते । इसीलिए अनेक देशों में ''मृत्यु के अधिकार'' की मांग की जाने लगी है जो व्यक्ति जीना नहीं चाहता है उसे मृत्यु का अधिकार उपलब्ध होना चाहिए। इस प्रकार की मांग उन वृद्ध रोगियों की तरफ से अधिक पनपने लगी है जो जिन्दा होते हुए भी अपने आपको मृतप्राय समझने लगे हैं अथवा जो ऐसे रोगों से पीड़ित हैं जिनका परिणाम अन्ततः कष्टदायक मृत्यु ही है। वे सोचते हैं कि अगर मृत्यु का अधिकार उन्हें मिल जाए तो वह किसी डॉक्टर के पास आकर अपने कष्टमयी जीवन से मुक्ति हेतु मृत्यु का इंजेक्शन लगवा लेगें। यद्यपि किसी देश में इस प्रकार का अधिकार नहीं दिया गया है और न ही इस प्रकार की माँग को उचित माना गया है, तथापि यह सोचने का विषय है कि वृद्धजन इस प्रकार का अधिकार क्यों माँग रहे हैं।

1.6.5.3 आर्थिक समस्याएँ

वृद्धजनों की एक प्रमुख समस्या अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा करने की है। भारत में 40 प्रतिशत से अधिक वृद्ध निर्धनता रेखा के नीचे अपना जीवन-यापन कर रहे है।। वृद्धों में विधवाओं की संख्या 55 प्रतिशत है। ऐसा माना जाता है कि वृद्धों की आज सबसे प्रमुख समस्या यह है कि आर्थिक साधनों के अभाव में वे जियें तो कैसे जिये, जीने का डर उनका पीछा नहीं छोड़ता है। पहले वृद्धजन अपने बच्चों को ''बुढापे की लाठी'' कहा करते थे, परन्तु अब ऐसा लगता है कि यह लाठी उनको किसी प्रकार का सहारा नहीं दे पा रही है। वे वृद्धावस्था में अपने बच्चों पर पूरी तरह से आश्रित होते हैं। यदि बच्चे बुजुर्गो का उचित ध्यान नहीं रखते तो उनमें अकेलापन एवं मानसिक डिप्रेशन जैसी बीमारियाँ विकसित होने लगती है। वे अपने आपको बेसहारा एवं परिवार में रहते हुए भी बेवश महसूस करने लगते हैं।

वृद्धों के पास आय का कोई साधन नहीं होता है जिससे कि वे स्वयं अपनी आवश्कताओं की पूर्ति कर सकें। इसमें केवल वे वृद्ध अपवाद हैं जिन्हें पेंशन मिलती है। परन्तु उनकी दशा भी बहुत ज्यादा अच्छी नहीं है। जब बच्चे उनकी आवश्यकताओं की ओर किसी प्रकार का ध्यान नहीं देते तो उनमें निराशा विकसित होना एक सामान्य बात बन जाती है। जो वृद्ध पेंशन इत्यादि द्वारा अपनी आवश्कताओं की पूर्ति करने में सक्षम हैं उनसे भी उनके परिजन पेंशन का पैसा किसी न किसी बहाने लेते हैं उन्हें वृद्धावस्था में नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए विवश कर देते हैं । वे इसलिए भी विवश हो जाते हैं कि परिवार का कोई विकल्प उनके सामने नहीं होता है। वे इसी बात से संतोष कर लेते हैं कि उनकी देखभाल न होने के बावजूद वे अपने परिजनों के साथ ही रह रहे हैं। कम-से-कम पड़ोसी तो यह नहीं सोचेंगे कि उनके बच्चे उनकी देख-रेख नहीं कर रहे हैं। लोक लाज उन्हें घर पर रहने तथा सभी प्रकार का कष्ट सहन करने के लिए विवश कर देती है।

1.6.5.4 सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामंजस्य की समस्याएँ

वृद्धों को सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामंजस्य की समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। उन्हें बहुधा परिवार में रहने की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है। यह कीमत उन्हें अपने आदर्शो से समझौता करने, अकेले रहने के लिए तथा फुर्सत के समय को भी अपनी इच्छा से व्यतीत न करने के लिए विवश कर देती है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक सामंजस्य की समस्याओं को निम्नलिखित तीन रूपों में देखा जा सकता है :-

(क) अकेलेपन की समस्या

वृद्धों की सबसे प्रमुख समस्या अकेलेपन की हैं। आयु बढ़ने के साथ ही व्यक्ति में अकेलेपन की भावना घर करने लगती है। ऐसा देखेन में आया है कि आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होते हुए भी बहुत से वृद्धजन अकेलेपन के कारण डिप्रेशन का शिकार हो

जाते हैं। अनेक अध्ययनों से पता चलता है कि औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के परिणामस्वरूप भारतीय समाज की परम्परागत संयुक्त परिवार प्रणाली कमजोर हो गई है। इसके फलस्वरूप परिवार तथा समाज के ढाँचे में वृद्धजन अवांछनीय हो गए हैं जिससे उनमें अकेलेपन की भावना विकसित होने लगी है। वृद्धजनों में अकेलेपन का भाव बहुत गहरा होता है क्योंकि हो सकता है कि उनके जीवनसाथी की मृत्यु हो चुकी हो, उनके मित्र किसी दूसरी जगह चले गए हों या मृत्यु हो गयी हो, उनके बच्चे किसी दूर के शहर में बस गए हों या वे बीमार रहते हो। अकेलेपन का भाव वृद्धजनों में आत्म-सम्मान एवं विश्वास की कमी करता है तथा वे सारा दिन अपनी बदहाली के बारे में सोच कर ही व्यतीत कर देते हैं।

(ख) सामाजिक सुरक्षा की समस्या

प्रत्येक व्यक्ति समाज में तभी काम सुचारू रूप से कर सकता है जब उसे सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध हो। भारत में परम्परागत रूप में संयुक्त परिवार एक ऐसी संस्था मानी जाती रही हैं जिसका कार्य अपने सदस्यों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना रहा है। संयुक्त परिवार में कोई भी सदस्य, चाहे वह किसी भी आयु वर्ग का क्यों न हो अपने आप को न तो अकेला मानता है और न ही किसी प्रकार से असुरक्षित महसूस करता है। परन्तु पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण जैसी बहुआयामी प्रक्रियाओं ने संयुक्त परिवार की संरचना को छिन्न-भिन्न कर दिया है। इसका परिणाम यह हुआ कि आज संयुक्त परिवार अनेक एकाकी परिवारों में बँटते जा रहे हैं। प्रत्येक व्यक्ति जिसे किसी शहर या औद्योगिक केन्द्र में नौकरी मिल जाती है वह अपनी पत्नी तथा बच्चों को वहीं ले जाता है तथा एक अलग 'एकाकी परिवार' की स्थापना कर लेता है। केवल वृद्ध ही बेवश एवं बेसहारा बच जाते हैं। जिनकी देखरेख करने वाला कोई नहीं होता है। इससे उनमें सामाजिक असुरक्षा की भावना का विकास होने लगता है।

(ग) मनोरंजन सम्बन्धी समस्याएँ

वृद्धजनों की प्रमुख समस्या समय व्यतीत करने की होती है। अगर पड़ोस में कोई अन्य वृद्ध है अथवा मोहल्ले में चार-पाँच वृद्ध हैं और उनमें आपस में काफी मेल-मिलाप है तो उनका समय सरलता से कट जाता है। यदि वे परिवार में रहने के ही आदी हैं तो उनके सामने सबसे बड़ी समस्या मनोरंजन की है। वृद्धों के लिए मनोरंजन का एकमात्र साधन रेडियों टेलीविजन है। दिल्ली जैसे महानगर में जब कभी केबिल आपरेटर हडताल कर देते हैं तो न्यूज चैनलों में अनेक वृद्धजनों को खाली बैठे हुए दिखाया जाता है कि उनका समय नहीं कट पा रहा है। टेलीविजन की सुविधा प्रत्येक परिवार में, विशेष रूप से ग्रामीण परिवारों में नहीं है। यदि इस प्रकार की सुविधा है भी तो बिजली की किल्लत की समस्या से टेलीविजन को भी बेकार बना दिया है। जितने समय तक बिजली गुल रहती है उतने समय तक वृद्धजन किसी अन्य मनोरंजन के साधन के अभाव में अपने आपको लाचार एवं असहाय मानने लगते हैं।

1.6.5.5. मनोवैज्ञानिक सामंजस्य की समस्याएँ

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक प्रो0 अरूण बूटा का कहना है कि दुर्भाग्यवश भारत में वृद्धजनों की समस्याएँ सुलझाने के लिए शोध की दिशा में प्रयास हाल ही में शुरू हुए हैं। वृद्धावस्था और वृद्धों के बारे में समाज में प्रचलित ज्यादातर जानकारी गलत धारणाओं, भ्रामक, सोच, भेदभाव, अज्ञानता तथा बूढे होने के बारे में व्यक्तिगत भय पर आधारित है। आपके अनुसार समाज के विभिन्न वर्गो में बड़े-बूढ़ों की स्थिति के बारे में बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। आपने अकेलेपन और मौत के डर को वृद्धों की प्रमुख मनोवैज्ञानिक समस्याएँ माना है।

(क) मृत्यु की चिन्ता की समस्या

युवावस्था में व्यक्ति को मृत्यु की चिन्ता नहीं होती क्योंकि उसे मृत्यु दूर की चीज दिखाई देती है। इसके विपरीत, वृद्धावस्था में मृत्यु जीवन यात्रा की अनचाही सहयात्री होते हुए भी बहुत करीब लगने लगती है। कागन एवं वालास द्वारा किए गए अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि सभी आयु वर्गों में वयस्क लोग विभिन्न प्रकार की धारणाओं में से मौत को सबसे घृणित मानते हैं। यद्यपि सभी मौत के बारे में नकारात्मक राय रखते हैं तथापि वृद्धजनों में उसके बारे में अन्य लोगों की तुलना में मृत्यु का डर अधिक होता है। मुलिवन्स एवं लोपज के अध्ययन में इस बात के प्रमाण सामने आए हैं कि वृद्ध (75 वर्ष से अधिक) युवावृद्धों (60 से 75 के मध्य) की तुलना में मृत्यु से अधिक भयभीत होते हैं। सिन्हा ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताने का प्रयास किया है कि वृद्धजनों में मौत की चिन्ता उनकी मनोवैज्ञानिक संरचना के कमजोर होने का परिणाम है। ग्रीन के अनुसार मौत का भय वृद्धजनों तथा उनके परिवार वालों के लिए सही उपचार तथा सेवाओं के इस्तेमाल में एक बड़ी बाधा है। मौत का भय उन वृद्धजनों में अधिक पाया जाता है जो अपने परिवार के साथ न रहकर सामान्यतया किसी 'वृद्ध संस्था' में रहते हैं।

(ख) मानसिक असुरक्षा

संयुक्त परिवार के विघटन ने वृद्धों में मानसिक असुरक्षा की भावना को भी विकसित कर दिया है। वृद्धजनों में अकेलेपन एवं पारिवारिक देखभाल के अभाव में डिप्रेशन होना एक सामान्य बात हो गई है। इस डिप्रेशन के कारण वे अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक सुरक्षा प्रदान करते थे परन्तु अब इसके विघटन के परिणामस्वरूप कोई ऐसा विकल्प उनके सामने नहीं है जो उन्हें संयुक्त परिवार जैसी मानसिक सुरक्षा प्रदान कर सकें। अनेक अध्ययनों से यह बात स्पष्ट हो गई है कि संयुक्त परिवार में रहने वाले वृद्धजनों में अकेलेपन एवं मानसिक असुरक्षा का अहसास एकाकी परिवार में रह रहे वृद्धजनों की तुलना

में काफी कम होता है। बढ़ते हुए अपराधों ने आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वृद्धजनों में भी असुरक्षा की भावना को विकसित कर दिया है।

1.7 अन्तर पीढ़ी संघर्ष

नयी एवं पुरानी या युवा एवं वृद्ध पीढ़ी के विचारों का अन्तर अन्तर-पीढ़ी संघर्ष का प्रमुख कारण है। दोनों पीढ़ियों के मूल्यों, विश्वासों तथा व्यवहार प्रतिमान में काफी अन्तर पाया जाता है। इसका मुख्य कारण दोनों ही पीढ़ियों के समाजीकरण में समय का अन्तर है। दोनों ही पीढ़ियों का समाजीकरण अलग-अलग समय में होता है। जैसे आपके माता-पिता एंव आपको ही ले लिया जाए तो, आपके एवं आपके माता-पिता के विचारों में काफी अन्तर पाया जाएगा क्योंकि दोनो ही पीढ़ियों का समाजीकरण अलग-अलग समय में हुआ है। आज मीडिया युक्त जिस माहौल में आप पल-बढ़ रहे हैं शायद आपके माता-पिता को यह माहौल न मिला हो इसलिए दोनों के विचारों में अन्तर होना स्वाभाविक ही है।

आज के युवा को पाश्चात्य संस्कृति, आधुनिक शिक्षा, औद्योगीकरण, नगरीयकरण ने काफी प्रभावित किया है। आज सहशिक्षा ने स्त्री-पुरूष के अन्तर को बहुत कम कर दिया है। विवाह के सम्बन्ध में देखे तो पुरानी पीढ़ी के सदस्यों का विवाह अपनी ही जाति में अधिकांशतः उनके माता-पिता द्वारा करवाया गया है, लेकिन आज की पीढ़ी जाति के बंधनों को नहीं मान रही है। वह आज अपनी पसन्द के अनुसार विवाह करना चाहते हैं, ऐसे में जहां पुरानी पीढ़ी के लोग बाधक बनते हैं । वही नयी एवं पुरानी पीढ़ी के मध्य संघर्ष की स्थिति बन जाती है।

आज का युवा अधिक स्वतंत्रता चाहता है, अपने हर फैसले को वह स्वयं की इच्छानुसार पूरा करना चाहता है जबकि पुरानी पीढ़ी के लोग पुरानी मान्यताओं के अनुसार अपने बच्चों को व्यवहार करते देखते हैं। यहीं से पुरानी पीढ़ी संघर्ष की शुरूआत होती है और धीरे-धीरे संघर्ष बढ़ता जाता है।

अन्तर पीढ़ी संघर्ष के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं :-

1.7.1 सामाजिक संरचना में तीव्र परिवर्तन

अन्तर पीढ़ी संघर्ष का प्रमुख कारण आधुनिक युग में सामाजिक संरचना में होने वाला तीव्र परिवर्तन है। इस तीव्र परिवर्तन के परिणामस्वरूप युवा पीढ़ी तो अपने मूल्यों को सरलता से बदल लेती हैं, जबकि पुरानी पीढ़ी अपने मूल्यों को नहीं छोड़ पाती। इससे दोनों पीढ़ियों में पाए जाने वाले मूल्यों में अन्तर होने लगता है तथा इनमें अन्तराल बढ़ता जाता है। यह अन्ततः अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को जन्म देता है। किंग्सले डेविस ने सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तन को अमेरिकी समाज में अन्तर-पीढ़ी संघर्ष का प्रमुख कारण माना है। इनका कहना है कि अत्याधिक तीव्र सामाजिक परिवर्तन युवाओं एवं उनके माता-पिताओं में संघर्ष को बढ़ावा देता है। इसी के परिणामस्वरूप अनके युवाओं ने अपने परिवारों से विद्रोह कर दिया है।

1.7.2 पारिवारिक संरचना में परिवर्तन एवं विघटन

आधुनिक युग में औद्योगिकरण, नगरीकरण, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण इत्यादि परिवर्तन की प्रक्रियाओं के परिणामस्वरूप संयुक्त परिवार की संरचना में भी अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों में संयुक्त परिवार में कर्ता की सर्वोच्च्य स्थिति को झंकोर कर रख दिया है। नवीन पीढ़ी कर्ता की निरंकुश सत्ता में नहीं रहना चाहती। इसलिए नवीन पीढ़ी के लोग कर्ता के आदेशों एवं निर्णयों को नहीं मानते हैं। इससे केवल कर्ता की भावनाओं को ही ठेस नहीं पहुँचती अपितु इससे अन्तर-पीढ़ी ही संघर्ष को भी प्रोत्साहन मिलता है। अमेरिका तथा पश्चिमी समाजों में भी माता-पिता की सत्ता में ह्रास अन्तर पीढ़ी संघर्ष का प्रमुख कारण रहा है।

1.7.3 मानदण्डों (आदर्शों) एवं मूल्यों में संघर्ष

परिवर्तन की प्रक्रियाएं समाज के पुरातन एवं नवीन आदर्शों एवं मूल्यों में संघर्ष की स्थिति पैदा कर देती है। इससे वैयक्तिक, पारिवारिक, सामुदायिक तथा सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। क्योंकि अन्तर-पीढ़ी संघर्ष परिवार से प्रारम्भ होता है, इसलिए आदर्शों एवं मूल्यों में पाया जाने वाला यह संघर्ष सम्पत्ति, विवाह अथवा पेशे में सम्बन्धित हो सकता है।

1.7.4 पारस्परिक विश्वास की कमी

जब विभिन्न पीढ़ियों में पाया जाने वाला विश्वास कम होने लगता है तो अन्तर-पीढ़ी संघर्ष विकसित हो जाता है। पुरानी पीढ़ी नहीं मानती है कि नयी पीढ़ी अपने उत्तरायित्व में उनसे कहीं पीछे हैं। नयी पीढ़ी के लोग 'ईजी गोइंग" के दर्शन को अपनाने वाले हैं, वे कम ईमानदार हैं तथा इतने बहादुर स्पष्टवादी नहीं हैं जितने कि पुरानी पीढ़ी के लोग। इसके विपरीत, नयी पीढ़ी के लोग पुरानी पीढ़ी के लोगों को आउट आफ डेट पुराने फैशन के तथा दकियानूसी विचारों को मानते हैं। वे समझते हैं कि हमें हर बात पर रोका-टोका जाना इन्हीं दकियानूसी विचारों का परिणाम है। यह अविश्वास की स्थिति अन्तर पीढ़ी संघर्ष को जन्म देती है।

1.7.5 दोषपूर्ण समाजीकरण

दोषपूर्ण समाजीकरण को भी अन्तर-पीढ़ी संघर्ष का एक कारण माना गया है। कई बार माता-पिता नौकरी करने के कारण अथवा अन्य किसी कारणवश अपने बच्चों का समाजीकरण ठीक प्रकार से नहीं कर पाते हैं। वे अपने बच्चों के कार्यो पर उस प्रकार का नियंत्रण नहीं रख पाते जिस प्रकार का नियंत्रण उन्हें उचित मार्ग-दर्शन हेतु अनिवार्य

होता है। ऐसी स्थिति में बच्चे माँ-बाप के नियन्त्रण से दूर होते जाते हैं, उनके एवं मां-बाप के मूल्यों के परस्पर विरोध विकसित होने लगता है तथा वे एक-दूसरे से अलग दृष्टिकोण अपनाते लगते हैं। इससे अन्तर पीढ़ी संघर्ष वृद्धि होती है।

1.7.6 पश्चिमी संस्कृति

पश्चिमी संस्कृति को भी अन्तर पीढ़ी संघर्ष के एक स्रोत के रूप में देखा गया है। स्वयं पश्चिमी देशों में तो अन्तर-पीढ़ी संघर्ष पाया ही जाता है, परन्तु जो देश पश्चिमीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप पश्चिमी संस्कृति के आदर्शो एंव मूल्यों को अपनाते हैं उनमें भी यह समस्या प्रसारित हो जाती है। पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव सर्वाधिक युवा पीढ़ी पर पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप युवा पीढ़ी अपने आपको अधिक आधुनिक मानने लगते हैं। युवा परम्परागत पारिवारिक संरचना, सामुदायिक मूल्यों तथा समाज में प्रचलित मान्यताओं को अपनी आकांक्षाओं को पूरा न करने का दोष देते है। वे इसे बदलना चाहते हैं कि जबकि पुरानी पीढ़ी पश्चिमी संस्कृति से अपेक्षाकृत कम प्रभावित होने के कारण पुरातन व्यवस्था को बनाए रखना चाहती है। दोनों पीढ़ियों में पाया जाने वाला यह द्वन्द अन्ततः अन्तर-पीढ़ी संघर्ष का कारण बन जाता है।

1.7.7 नगरीकरण एवं औद्योगीकरण

नगरीकरण एवं औद्योगीकरण ऐसी जुड़वॉ प्रक्रियाएं हैं जो किसी भी समाज में बहुआयामी परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी है। इनसे पारिवारिक, सामुदायिक तथा सामाजिक संरचना इतना अधिक प्रभावित होती है कि परम्परागत मूल्यों को बनाए रखना कठिन हो जाता है। इन प्रक्रियाओं के परिणामस्रूप होने वाले परिवर्तनों से नवीन पीढ़ी तो शीघ्रता से प्रभावित हो जाती है, परन्तु पुरानी पीढ़ी पर इनके द्वारा जनित परिवर्तन का अधिक प्रभाव नहीं पड़ता है। मूल्यों में परिवर्तन अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को विकसित करता है।

1.7.8. पीढ़ियों में शिक्षा की दृष्टि से अन्तराल

अन्तर-पीढ़ी संघर्ष उन परिवारों अथवा समुदायों में अधिक पाया जाता है जिनमें दो पीढ़ियों में शिक्षा की दृष्टि से काफी अधिक अन्तर पाया जाता है। नवीन पीढ़ी शिक्षा के परिणामस्वरूप अपने दृष्टिकोण में अधिक आधुनिक, तार्किक व वैज्ञानिक बन जाती है, जबकि पुरानी पीढ़ी परम्परावादी व्यवस्था से बाहर नहीं निकल पाती है। नयी पीढ़ी के लोग सोचते हैं कि पढ़े-लिखे होने के कारण वे पुरानी पीढ़ी के लोगों से अधिक जानकारी रखते हैं। यह बात पुरानी पीढ़ी के लोग मानने को तैयार नहीं है। वे सोचते हैं कि जितना अनुभव उनके पास हैं उतना शिक्षा नयी पीढ़ी को नहीं दे पाती । इस प्रकार, दोनों पीढ़ियों के सदस्यों के दृष्टिकोण में पाया जाने वाला परस्पर विरोध अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को जन्म देता है।

1.7.9 पुरानी पीढ़ी का नयी पीढ़ी पर दोषारोपण

प्रत्येक पुरानी पीढ़ी नयी पीढ़ी को बिगड़ी हुई पीढ़ी मानकर उस पर अनेक प्रकार का दोषारोपण करती है। आचार्य रजनीश कहते हैं कि उन्होने दुनिया की पुरानी किताब देखी है और उसे देखकर हैरान हो गए हैं। उन्हीं के शब्दों में, चीन में सम्भवतः दुनिया की सबसे पुरानी किताब है, जो साढ़े छह हजार वर्ष पुरानी है और उस किताब की भूमिका में लिखा हुआ है कि आज के लोग बिल्कुल बिगड़ गए हैं, पहले के लोग बहुत अच्छे थे। मै बहुत हैरान हुआ........ आज तक जमीन पर एक भी किताब ऐसी नहीं है जिसमें यह लिखा हो आजकल के लोग अच्छे हैं परन्तु यह केवल ''मिथ्या तथ्य'' है। आचार्य रजनीश ठीक कहते हैं कि ''यदि पहले के लोग अच्छे थे तो ढाई हजार वर्ष पहले बु0 ने किन लोगों को सिखाया था कि चोरी मत करो, झूठ मत बोलो, हिंसा मत करो ? जीसस क्राइस्ट, कृष्ण, बुद्ध और कन्यफ्यूशियस किनके लिए रोए थे ? ये किनसे कहते रहे कि तुम अच्छे हो जाओं ? वास्तविकता यह है कि बीते हुए कल के विद्रोही आज की

नून-तेल लकड़ी के फेर में उलझे, थके सुरक्षा की तलाश में आने वाली कल की पीढ़ी की आलोचना में लग जाते हैं।

1.8 साहित्य का पुनरावलोकन

यद्यपि समाजशास्त्री शोध कार्यो का वर्चस्व भारत एवं अन्य स्थानों पर अपनी चरम सीमा पर है। बदलते परिवेश में पनप रहें अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के विभिन्न आयामों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से अध्ययन कमोवेश कम हुये हैं। इसी क्रम में प्रस्तुत शोध अध्ययन संदर्भित है। इन संदर्भ में उपलब्ध संदर्भ ग्रंथों का अध्ययन किया गया, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार हैं :-

प्रस्तुत शोध कार्यो के संदर्भ में उपलब्ध साहित्य का पुनरावलोकन किया गया जो उसका तुलनात्मक मूल्यांकन यह निर्दिष्ट करता है कि व्यापक अथवा अधिक प्रतिशत के समाजशास्त्रीय शोध कार्य वर्तमान समस्याओं के संदर्भ में समाजशास्त्रीय यह अन्य साहित्य में उपलब्ध नहीं है। भारत वर्ष, कनाडा, अफ्रीका तथा अन्य यूरोपीय राष्ट्रों में व्यक्तियों के संदर्भ में कुछ योजनाओं का क्रियान्वयन प्रस्तावित किया गया, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से तत्संबधित योजनायें संचालित नहीं हो सकी। वर्तमान नवी सदी में जो साहित्य शोध कार्यो का उपलब्ध है उसमें विविधता है और कोई भी अध्ययन प्रस्तुत आशय का उपलब्ध नहीं हो सका है। सामाजिक मूल्यों, परिवर्तनों एवं व्यवहार के नियोजन के लिये जो शोध कार्य प्रमुख रूप से उपलब्ध हुये हैं वह विशेष रूप से वर्णनीय हैं तथा इसमें एवेल्शन (1950), आलपोर्ट (1957) ,एण्डरशन (1972), बेकर (1964), ब्लक (1961), केटल आदि (1950), चाइल्ड (1975), कूले (1981), डी. चार्म्स (1968) , डेविस (1969) , हाल (1957) , हाफमैन (1960) , तथा मैकडोनाल (1970), डी.पाल (1992), पी.के.मुन्तगी (1997), एस. सिंहो (1998) आदि प्रमुख हैं इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बी.लक्ष्मी (1999) का अप्रकाशित शोध ग्रन्थ है। इन शोध अध्ययनों का तुलनात्मक निष्कर्ष यह है कि सामुदायिक

विविधता की समीकरणों में अन्तर पीढ़ी की समस्याओं में नित्यप्रति परिवर्तन होते जा रहे हैं और उनमें मनोवैज्ञानिक रूप से अस्थायित्व की प्रवृत्ति विकसित हो रही है। जिसका सामाजिक निराकरण करने की महती आवश्यकता है और इस आवश्यकता की परिपूर्ति प्रस्तुत शोध अध्ययन के माध्यम से की जा सकती है।

1.9 शोध अध्ययन के उद्देश्य

बदलते सामाजिक परिवेश में अन्तर-पीढ़ी संघर्ष की तीव्र होती प्रक्रिया का दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन के लिए निम्नांकित उद्देश्य किए गए हैं :-

1. युवा और बुजुर्ग /वृद्ध वर्ग के जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य की तुलनात्मक स्थिति का अध्ययन करना (वर्ष 1991-2001 की जनगणना के परिप्रेक्ष्य में)
2. युवा और बुजुर्ग/ वृद्ध वर्ग के व्यक्तियों के मध्य मत भिन्नताओं के कारणों का अध्ययन करना।
3. युवा और बुजुर्ग/ वृद्ध व्यक्तियों के मध्य पारिवारिक सामंजस्य की स्थिति का अध्ययन करना।
4. युवा और बुजुर्ग/ वृद्ध व्यक्तियों के मध्य सामाजिक सामंजस्य की स्थिति का अध्ययन करना।
5. पीढ़ी अन्तराल की दृष्टि से शिक्षा के स्तर की असमानता अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को जन्म देती है।
6. पुरानी पीढ़ी की नवीन पीढ़ी पर दोषारोपण, पारस्परिक विश्वास की कमी अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को जन्म देता है।
7. अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के नगरीकरण एवं औद्योगीकरण की प्रक्रिया एक कारण है।
8. अन्तर-पीढ़ी संघर्ष समाज के विभिन्न आयामों जैसे-पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में दृष्टिगत होता है।

1.10 उपकल्पना

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए निम्नांकित उपकल्पनाओं को निर्माण किया गया है :-

1. अन्तर पीढ़ी संघर्ष का मुख्य कारण आधुनिक युग में सामाजिक संरचना में होने वाला तीव्र परिवर्तन है।
2. अन्तर पीढ़ी संघर्ष का एक कारण पारिवारिक संरचना एवं विघटन की प्रक्रिया है।
3. समाज के पुरातन एवं नवीन आदर्शो एवं मूल्यों में पनप रही संघर्ष की स्थिति अन्तर पीढ़ी संघर्ष की स्थिति तीव्र होती जाती है।
4. पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव तथा दोषपूर्ण समाजीकरण के फलस्वरूप अन्तर पीढ़ी संघर्ष की स्थिति तीव्र होती जाती है।
5. पीढ़ी अन्तराल की दृष्टि से शिक्षा के स्तर की असमानता अन्तर पीढ़ी संघर्ष को जन्म देती है।
6. पुरानी पीढ़ी की नवीन पीढ़ी पर दोषारोपण , पारस्परिक विश्वास की कमी अन्तर पीढ़ी संघर्ष को जन्म देता है।
7. अन्तर पीढ़ी संघर्ष के लिए नगरीकरण एवं प्रौद्योगीकरण की प्रक्रिया एक कारण है।
8. अन्तर पीढ़ी संघर्ष समाज के विभिन्न आयामों जैसे-पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में दृष्टिगत होता है।

1.11 शोध अध्ययन की उपयोगिता

प्रस्तुत शोध अध्ययन वदलते परिवेश को दृष्टिगत रखते हुए उपयोगी होगा। विघटनात्मक प्रवृत्ति मानवीय मूल्यों का ह्रास, व्यक्तिवादी प्रवृत्ति में वृद्धि, दोषपूर्ण समाजीकरण के परिणामस्वरूप पारिवारिक संरचना में दिनोदिन परिवर्तन दृष्टिगत होते जा

रहे हैं। जिसके पीछे कहीं न कही विभिन्न पीढ़ियों के मध्य पनप रहा संघर्ष उत्तरदायी है। इस संघर्ष के कारणों का समाजशास्त्रीय अध्ययन सामाजिक हित की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में शोधार्थिनी द्वारा युवा एवं वृद्धों के मध्य पनप रहें अन्तर पीढ़ी संघर्ष के कारणों की विस्तृत विवेचना करते हुए उन बिन्दुओं की ओर इंगित किया है जो अन्तर पीढ़ी संघर्ष की दिशा में प्रभावी भूमिका निभाते हैं। शोधार्थिनी द्वारा दोनों वर्गो के व्यक्तियों से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से कारणों को जानने की कोशिश करते हुए उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया है।

अध्याय–2

अध्ययन पद्धति

- पद्धति
- अध्ययन पद्धति
- न्यादर्श
- प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्य
- सारणीयन एवं विश्लेषण

2. अध्ययन पद्धति

पूर्व अध्याय में शोध अध्ययन की प्रस्तावना प्रस्तुत की गयी है। प्रस्तुत अध्याय में अध्ययन पद्धति एवं उपकरणों की विवेचना की गयी है।

2.1 पद्धति

पद्धति का तत्पर्य उस प्रणाली से है जिसे कि एक वैज्ञानिक अपनी अध्ययन वस्तु के सम्बन्ध में तथ्ययुक्त निष्कर्ष निकालने का कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं है। इसके लिए निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, तुलना तथा निष्कर्षीकरण के कठिन मार्ग को अपनाना पड़ता है। किसी भी शोध में अनुसंधान प्रक्रिया का विशेष महत्व होता है अनुसंधान का महत्व इस बात में निहित होता है कि वे बौद्धिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से जिज्ञासा शान्त करने में सहायक हो सके। अनुसंधान एक ऐसी जटिल प्रक्रिया है जिसका आधार वैज्ञानिक पद्धति होता है।[1] क्रमबद्ध अध्ययन विज्ञान की आत्मा होती है। वैज्ञानिक पद्धति में क्रमबद्धता को वरीयता दी जाती है।

श्रीमती पी0वी0 यंग ने वैज्ञानिक पद्धति के चार प्रमुख चरण बताएं हैं।[2]

1. समस्या से सम्बन्धित उपकल्पना का निर्माण।
2. उपकल्पना परीक्षण के लिए तथ्यों का अवलोकन
3. परीक्षण एवं लेखन योग्य तथ्यों का वर्गीकरण।
4. विश्लेषण से नियमों का समान्यीकरण करना।

---

[1] मुखर्जी आर0एन0 सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी, दिल्ली पृ0सं0-105-06

[2] गुप्ता एवं शर्मा, एम0एमल0सी एवं सामाजिक सर्वेक्षण शोध एवं सांख्यिकी आगरा, पृ0सं0-15

इस दृष्टि से अनुसंधान एक सुनियोजित प्रक्रिया है जो प्रायः पद्धति शास्त्र के रूप में जानी जाती है। कुछ विद्वानों ने इसे विज्ञान के साथ ही विकसित प्रक्रिया माना है। कुछ विद्वान इसे स्वयं विज्ञान मानते है। उनका तर्क है कि पद्धति शास्त्र अविभाज्य होता है इसका खण्ड-खण्ड विभाजन संभव नहीं है इसलिए यह स्वतः एक सम्पूर्ण विज्ञान है यह कारणता में विश्वास करता है। किसी घटना या समस्या में किसी कारण का होना निश्चित होता है। इन्हीं कार्य कारण के विश्लेषण में पद्धति शास्त्र रूचि लेता है।

हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव (1977) ने कहा है कि अनुसंधान चाहे जिस कोटि का हो उसके निम्नांकित सोपान होते हैं-

यह सभी सोपान पद्धतिशास्त्र के ही अंग हैं किसी शोध को सही परिप्रेक्ष्य में जाँचने एवं परीक्षण के लिए हमें पद्धतिशास्त्र का प्रयोग करना पड़ता है।
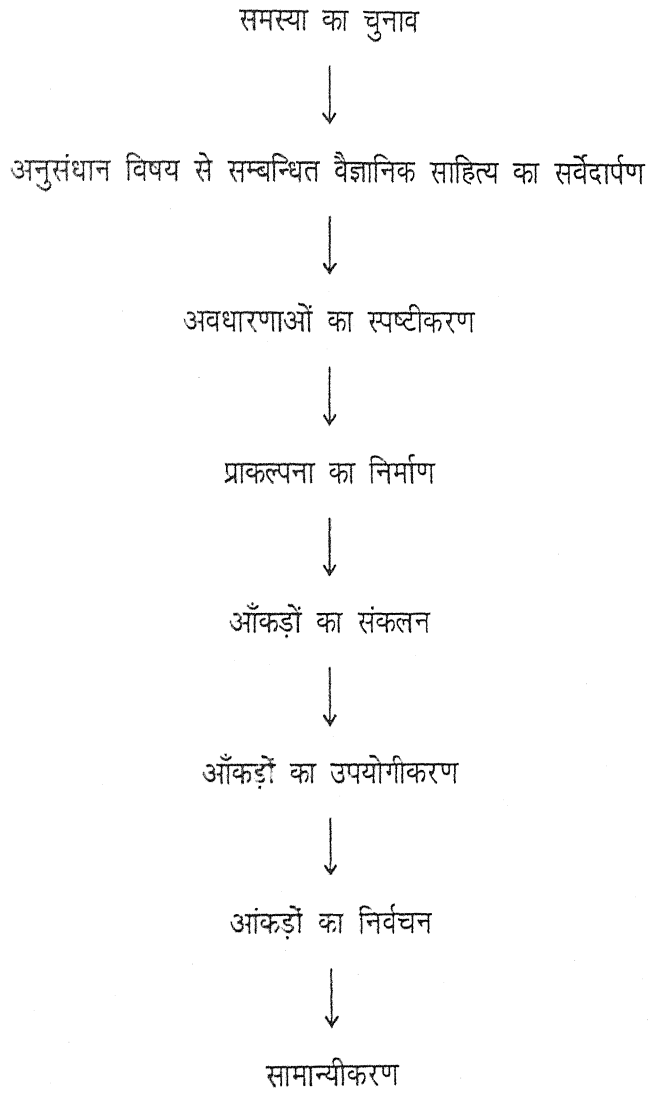
किसी शोध का प्रारम्भिक चरण समस्या का चयन है। समस्याओं में से समस्या का चयन स्वयं समस्या होती हैं इस सम्बन्ध में डॉ0 श्यामधर सिंह (1986) ने अपने अध्ययन

में कहा है कि समस्याओं का चयन समस्या समाधान का आरम्भिक बिन्दु स्पष्ट रूप से एक विशेष समस्या का समाधान बनता है। इस दृष्टि से समस्या का चयन ही शोध प्रारुप का निर्धारण करता है।

शोध प्रारुप के सम्बन्ध में ए0एल0 एफाक का कथन है कि उद्देश्य की प्राप्ति के पूर्व ही उद्देश्य का निर्धारण का करके शोध कार्य की जो रूपरेखा बना ली जाती है, वही शोध प्रारुप है।[1] इसे अनुसंधान प्रारुप या अनुसंधान का प्रायोजित प्रारूप कहा जाता है। समाज में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को अध्ययन हेतु तभी चुना जाता है जब उसका कोई बौद्धिक अथवा व्यावहारिक उपयोग हो। समस्या के चयन में ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि वह किसी प्रकार के समाजोपयोगी सिद्धान्त से जुड़ी है? क्या वह सम्पूर्ण व्याप्त सिद्धान्त के किसी उपांग को प्रमाणित करने में सहायक है? अथवा मध्य अभिसीमा सिद्धान्त की श्रृखला में वृद्धि कर रहा है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में समस्या का चयन समयोपयोगी होता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन बुन्देलखण्ड क्षेत्र में "दलितों की शैक्षणिक स्थित का अध्ययन करेगा वहीं शिक्षा के प्रति उनकी अभिरूचि एवं उससे जुड़ी विभिन्न समस्याओं का मूल्यांकन करने में सहायक होगा।

2.2 अध्ययन क्षेत्र

लुण्डवर्ग ने लिखा है कि इससे बढ़कर अपव्ययी व निष्फल अथवा अनुभवहीन अनुसंधानकर्ता का लक्षण और कुछ नहीं हो सकता कि आँकड़ों का उत्साहपूर्वक संकलन इस सिद्धान्त के आधार पर करना आरम्भ कर दिया जाए कि यदि केवल पर्याप्त तथा विभिन्न प्रकार के आंकड़ों को एकत्रित कर लिया जाए तो उसके परिणामों के आधार पर

---

[1] बोगार्ड्स, ई0एस0 सोशियोलॉजी पृ0सं0-43

किसी भी या समस्त प्रश्नों को उत्तर दिया जा सकता है।[1] इसलिए आँख बन्द करके सभी प्रकार के आँकड़ों को एकत्रित करने का प्रलोभन त्याग कर अध्ययन क्षेत्र को परिसीमित करना अति आवश्यक है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिए तथ्यों के संकलन हेतु उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड के हमीरपुर जनपद के युवा एवं वृद्ध व्यक्तियों का चयन किया गया है। जनपद का अपना गौरवशाली इतिहास रहा है। जनपद हमीरपुर चित्रकूटधाम मण्डल का जनपद है जिसकी सीमाएं कानपुर देहात, जालौन, बाँदा तथा महोबा जनपदों की सीमाओं को छूती हैं। यह जनपद रेल तथा सड़क मार्ग से जुडा होने के साथ औद्योगिक संस्थानों की दृष्टि से बुन्देलखण्ड भू-भाग में अपना विशेष स्थान रखता है। हमीरपुर जनपद को शोध प्रबन्ध का अध्ययन क्षेत्र चुना गया है। अध्ययन क्षेत्र के 200 वृद्ध व्यक्तियों तथा 200 युवाओं का साक्षात्कार अनुसूची प्रविधि के माध्यम से किया गया है। समय तथा उपलब्ध आर्थिक संसाधनों को ध्यान में रखकर क्षेत्र का चयन किया गया है। अध्ययन क्षेत्र , वैज्ञानिक निष्कर्ष प्राप्त करने तथा उपकल्पनाओं के सत्यापन की दृष्टि से उचित है।

2.3 अध्ययन पद्धति

अध्ययन के निष्कर्ष हेतु तथ्यों के संकलन के लिए साक्षात्कार तथा गहन अवलोकन, दोनो प्रकार की विधियों का प्रयोग किया गया है। अध्ययन क्षेत्र उत्तरदाताओं का साक्षात्कार करके, अनुसूची के माध्यम से तथ्यों का व्यवस्थित संकलन किया गया है। साक्षात्कार माध्यम से प्राप्त जानकारी अपने आप में पर्याप्त नहीं थी अतः विभिन्न परिवारों की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं मनोवृत्तियों के साथ ही उनके सामाजिक परिवेश के

[1] मुखर्जी, आरएन0, पूर्वोक्त पृ0स0-21

यथार्थ ज्ञान के लिए अवलोकन प्रविधि का आश्रय लेना उचित प्रतीत हुआ है। शोधार्थिनी को अध्ययन क्षेत्र के परिवारों में अनेकों बार जाना पड़ा है।

अध्ययन हेतु चयनित परिवारों के भू-स्वामित्व, कृषित भूमि, जनसंख्या, शिक्षा, व्यवसाय, पारिवारिक संरचना, स्वास्थ्य सेवाएं, यातायात एवं संचार संसाधनों से सम्बन्धित आंकड़ों का एकत्र कर उनका विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों का संग्रहण पूर्णतया क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर आधारित है जबकि द्वैतीयक आंकड़ों के संग्रहण में जनगणना पुस्तिका गजेटियर तथा अन्य उपलब्ध अभिलेखों का सहारा लिया गया है।

वृद्ध व्यक्तियों को स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानी होने से तथा उनके कार्य के स्थान पर जाने से सम्पर्क हो पाना आसान नहीं था अतः उनसे मिलने तथा सूचना संग्रहीत करने हेतु उनके पास पुनर्सम्पर्क स्थापित करना पड़ा।

तथ्य संकलन के दौरान ऐसा प्रतीत हुआ है कि मात्र वृद्ध व्यक्तियों से ही सूचना संकलित करना पर्याप्त नहीं है जब तक कि उन युवा सदस्यों से सूचना न प्राप्त की जाए जिनके साथ वृद्ध आवासित है अथवा वे जो वृद्धों को आश्रय दे रहे हैं। इसके लिए उन सदस्यों से भी सूचनाएं संकलित की गई जिसके लिए अवलोकन प्रविधि का सहारा लिया गया तथा इन सूचनाओं को दैनन्दिनी में क्रमवार अंकित किया गया। इस दैनन्दिनी में क्षेत्रीय लोगों अथवा पड़ोसियों की प्रतिक्रियाओं को अंकित किया गया। शोध कार्य में यह दैनन्दिनी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत हुई। वास्तव में वृद्धों की सामाजिक समस्याओं एवं परिवर्तनीय परिवेश की समग्र झांसी दैनन्दिनी में अंकित तथ्यों से प्राप्त हुई है जो साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त होना संभव नहीं थी।

उत्तरदाताओं से साक्षात्कार के समय भी अपेक्षित तथ्यों के संकलन के साथ ही सामाजिक जीवन, पारिवारिक संरचना के प्रति दृष्टिकोण, पारिवारिक विघटन के सामाजिक एवं वैयक्तिक कारणों की विस्तृत जानकारी निरन्तर प्राप्त की जाती रही।

सामाजिक कार्यकर्ताओं, वृद्धाश्रम संचालित करने वाले प्रबन्धकों समाज कल्याण विभाग के कर्मचारियों से सम्पर्क करने से सामाजिक वास्तविकताओं को समझने में अत्याधिक सहायता प्राप्त हुई। कई बार चयनित परिवारों में जाने से उन परिवारों के सदस्यों के साथ मैत्री एवं सद्‌भावनापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गये जिससे उत्तरदाताओं से साक्षात्कार करने में शोधार्थिनी को काफी सुविधा हुई । युवाओं का चयन महाविद्यालयी छात्र-छात्राओं विभिन्न कार्यालयों में कार्यरत युवाओं एवं युवतियों के रूप में किया गया इसी प्रकार बुजुर्ग वृद्धों का चयन तहसील कार्यालय न्यायालयों तथा अस्पतालों के साथ अवकाश प्राप्त अथवा घंटों में रहने वाले वृद्धों में से किया गया।

वृद्ध व्यक्तियों के समाजार्थिक समस्याओं का अध्ययन करने हेतु तथ्यों को एकत्रित करने हेतु बनाई जाने वाली साक्षात्कार अनुसूची को अन्तिम रूप देने से पहले उसका, अध्ययन क्षेत्र के कुछ उत्तरदाताओं से साक्षात्कार करके पूर्व परीक्षण किया गया। प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के लिए प्रयुक्त अनुसूची में मुक्त प्रकार के विकल्पहीन तथा पूर्व निर्धारित विकल्प वाले दोनों प्रकार के प्रश्न आवश्यकतानुसार रखे गये हैं। तथ्यों के संकलनार्थ प्रयुक्त साक्षात्कार अनुसूची को इस शोध प्रबन्ध में परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।

2.4 न्यादर्श

किसी भी शोध में समग्र सामग्री के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता है। वे शोध के अंतरंग भाग हैं लेकिन साथ ही वे स्रोत भी समान रूप में महत्वपूर्ण हैं जहां से एक शोधार्थी समस्या के विश्वसनीय अध्ययन के लिए सूचनाएं संकलित करता है। विश्वसनीय स्रोतों से संमकों या न्यादर्श का संकलन शोधकर्ता के बोझ को महत्वपूर्ण रूप से कम कर देना है। वास्तव में न्यादर्श संकलन शोध अध्ययन का महत्वपूर्ण चरण होता है। जिसमें अध्ययन विषय से सम्बन्धित न्यादर्श के संकलन हेतु गजेटियर सामुदायिक

विकास द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदन, कल्याण मंत्रालय की पत्रिकाएं पंचवर्षीय योजनाओं की रिपोर्ट, जनगणना पुस्तिका का सहारा लिया गया है।

किसी भी शोध कार्य के लिए न्यादर्श का संकलन प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार, निरीक्षण आदि पद्धतियों के माध्यम से किया जाता है। सही सूचना प्राप्त करने के लिए सूचनादाताओं से मेल मिलाप बढ़ाना आवश्यक हो जाता है ताकि वे किसी भी बात को न छिपाकर स्पष्ट एवं यथार्थ सूचनाएं देने के लिए तैयार हो जाएं। साथ ही यह भी आवश्यक है कि न्यादर्श संकलन करते समय अध्ययनोपयोगी तथ्यों की उपेक्षा न हो। प्रस्तुत अध्ययन में मुख्य रूप से 200 बुजुर्ग/वृद्ध व्यक्तियों तथा 200 युवा वर्ग के सदस्यों का चयन शोधार्थिनी ने अध्ययन क्षेत्र में जाकर विषय या समस्या से सम्बन्धित जीवित व्यक्तियों से साक्षात्कार करके या अनुसूची की सहायता से एकत्रित किए हैं। प्राथमिक तथ्य इस अर्थ में प्राथमिक होते हैं क्योंकि उन्हें शोधार्थिनी ने अपने अध्ययन उपकरणों की सहायता से प्रथम बार मौलिक रूप से एकत्र किए हैं तथा निरीक्षण किया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थिनी द्वारा अध्ययन विषय में सन्दर्भित विभिन्न आयु समूह के वृद्ध एवं युवा वर्ग के सदस्यों के मध्य अन्तर पीढ़ी संघर्ष की समस्याओं के अध्ययन के लिए साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से शोधार्थिनी ने स्वयं अध्ययन क्षेत्र में जाकर प्राथमिक तथ्यों का संग्रह किया है। शोधार्थिनी ने अनुसूची के प्रश्नों के उत्तर, उत्तरदाताओं द्वारा दिये गये उत्तरों के आधार पर भरे हैं। प्राथमिक तथ्यों के संग्रह के समय शोधार्थिनी द्वारा अवलोकन प्रविधि को भी अपनाया गया है। साक्षात्कार, शोधार्थिनी ने न्यादर्श संकलन हेतु किया है। जिनका साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है । कुछ उत्तरदाता पारिवारिक दबाब एवं निर्भरता के कारण संतोषजनक उत्तर नहीं दे सके हैं फिर भी उक्त समग्र के अधिकांश उत्तरदाताओं ने अपेक्षित सहयोग प्रदान किया है।

साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त तथ्यों के वर्गीकरण एवं सारणीयन के समय 415 उत्तरदाताओं की भरी हुई अनुसूची में से 15 अनुसूचियों को कम कर दिया गया है जो अपूर्ण एवं अस्पष्ट थी। इस प्रकार कुल 400 उत्तरदाताओं की अनुसूचियों के आधार पर सांख्यिकीय गणना की गयी है।

2.5 प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्य

वास्तविक सूचना या तथ्यों के बिना सामाजिक अनुसंधान या शोध वास्तव में एक अपंग प्राणी की भांति है।[1] अनुसंधान या शोध की सफलता इसी बात पर निर्भर रहती है कि एक शोधार्थी अपने अध्ययन विषय के सम्बन्ध में कितने वास्तविक निर्भर योग्य सूचनाओं एवं तथ्यों को एकत्रित करने में सफल होता है।

सामाजिक शोध में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं या न्यादर्शो की आवश्यकता होती है। इन्हें दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

1. प्राथमिक तथ्य
2. द्वैतीयक तथ्य

प्राथमिक तथ्य वे मौलिक आंकड़े होते हैं जिन्हें निरीक्षण के समय शोधार्थिनी ने अपनी डायरी में अंकित किया जो इस शोध के लिए अत्यन्त उपयोगी थे। इस शोध अध्ययन में जिन प्राथमिक तथ्यों का उपयोग किया गया है वे पूर्णतया प्राथमिक एवं मौलिक है जिनको एकत्रित करने के लिए शोधार्थिनी को न्यायदर्शो से अनेकों बार सम्पर्क करना पड़ा है।

किसी भी शोध में प्राथमिक तथ्यों का जो महत्व होता है वह सर्वविदित है किन्तु द्वैतीयक तथ्यों के बिना शोध की वैज्ञानिकता प्रश्न चिन्हित हो जाती है, ये वे आंकड़े

---

[1] मुखर्जी, आर०एन० - पूर्वोक्त - पृ०सं० 100

या सूचनाएं होती हैं, जो शोधार्थिनी को प्रकाशित व अप्रकाशित प्रलेखों रिपोर्ट, सांख्यिकी, पाण्डुलिपि, पत्र डायरी, आदि से प्राप्त होते हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में तथ्यों के साथ ही द्वैतीयक स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं का सहारा लिया गया है। जनपद सांख्यिकी पत्रिका (झासी एवं हमीरपुर) गजेटियर जनगणना पुस्तिका के विभिन्न भाग, शोध पत्रिकाओं, भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय से प्रकाशित विभिन्न शोध प्रतिवेदनों एवं पत्रिकाओं, दैनिक एवं साप्ताहिक समाचार पत्रों के शोध परक आलेखों से अध्ययनोपयोगी तथ्यों या सूचनाओं का उपयोग इस अध्ययन में किया गया है।

2.6 सारणीयन तथा विश्लेषण

सर्वेक्षण कार्य के दौरान एकत्रित की हुई सामग्री प्रायः बड़ी मात्रा में और बिखरी हुई दशा में होती है। इनमें किसी प्रकार की व्यवस्था देखने को नहीं मिलती है। जो अनुपयोगी भी प्रतीत होती है, उन्हें उपयोग बनाने के लिए तथ्यों को उनकी समानता, विभिन्नता या किसी अन्य आधार पर कुछ निश्चित श्रेणियों में व्यवस्थित करना आवश्यक होता है।

जिस प्रकार एक मकान के निर्माण में पत्थरों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार शोध रूपी भवन के निर्माण में समंकों की आवश्यकता होती है, लेकिन जिस प्रकार पत्थरों के ढेर को मकान नहीं कहा जा सकता, उसी प्रकार से समंको से ही शोध पूरा नहीं हो पाता।

गुडे एवं हॉट तथा बाइकनर के कथानुसार जो शोधार्थी समकों के विश्लेषण एवं उनके प्रस्तुतीकरण पर पर्याप्त ध्यान नहीं देता है वह अपने शोध अध्ययन

के सही निष्कर्ष को प्राप्त करने में सफल नहीं होगा, क्योंकि समंक या न्यादर्श मात्र कच्चे माल की तरह होते हैं।

सारणीयन एवं विश्लेषण के द्वारा ही उन्हें व्यवस्थित रूप दिया जाता है, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध से सम्बन्धित समंकों का विश्लेषण करने के लिए अनुपातों, माध्यों, प्रतिशतों एवं अन्य सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया गया है। वर्तमान शोध में समंको का विश्लेषण यथा स्थान पर प्रस्तुत किया गया है एवं समंकों को विभिन्न सारणीयों द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

यह शोध प्रबन्ध की सबसे अन्तिम व्यवस्था है। शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से ही शोधकर्ता से सम्बन्धित सभी समंको एवं सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से जन सामान्य के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। शोधार्थिनी द्वारा शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है क्योंकि यही सम्पूर्ण शोध की आत्मा है और उसका अन्तिम उद्देश्य भी ।

अध्याय –3

अन्तर-पीढ़ी : जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य

- जनसंख्या के प्रमुख सिद्धान्त
- भारत मं जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान स्थिति
- विभिन्न जनगणना वर्षो में वृद्धों की जनसंख्या
- विभिन्न जनगणना वर्षों में युवाओं की जनसंख्या
- वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार वृद्धों की जनसंख्या

3. अन्तर-पीढ़ी : जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य

पूर्व अध्याय में शोध अध्ययन की पद्धति एवं उपकरणों की विवेचना की गयी है । प्रस्तुत अध्याय में अन्तर-पीढ़ी के जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य का उल्लेख किया गया है।

कार्ल मार्क्स ने लिखा है कि किसी भी समाज के अस्तित्व व निरन्तरता के लिए दो प्रकार के उत्पादन है - एक तो जीवित रहने के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन और दूसरा बच्चों का उत्पादन। मनुष्य पहले जीवित रहेगा, फिर कहीं इतिहास का निर्माण कर सकेगा और जीवित रहने के लिए भोजन,कपड़ा व मकान आदि आधारभूत चीजों का उत्पादन आवश्यक है। साथ ही, मनुष्य चूँकि मरणशील है, इसलिए मरने वाले सदस्यों का स्थान लेने के लिए बच्चों का उत्पादन भी आवश्यक है ताकि समाज की निरन्तरता बनी रहे। पर यदि बच्चों के उत्पादन का यह सिलसिला बिना समझे-बूझे और बिना रोक-टोक के मनमाने ढंग से चलता रहता है तो जनसंख्या का विस्फोट होता है और बच्चे परिवार के स्नेहजन न रहकर बोझ बन जाते हैं क्योंकि उस अवस्था में जीवित रहने के साधनों के उत्पादन और बच्चों के उत्पादन में सन्तुलन कायम नहीं रह पाता है। इसीलिए परिवार-कल्याण की कल्पना की गई है और 'हम दो हमारे दो' का नारा लगाया जाता है और उपदेश दिया जाता है कि 'दो बच्चों का लक्ष्य महान, लड़का-लड़की एक समान'। कुछ भी हो हम सभी का लक्ष्य एक है - एक सन्तुलित परिवार और सबके लिए सुख-सुविधाएँ।

3.1 जनसंख्या के प्रमुख सिद्धान्त

जनसंख्या के सम्बन्ध में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने विचारों को अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत किया । सर्व श्री माल्थस एवं सैडलर के विचार कुछ इस प्रकार हैं :-

3.1.1 माल्थस का जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त :- माल्थस ने सन् 1978 में "An Essay on Principal of Population" नामक पुस्तक में अपने जनसंख्या सम्बन्धी सिद्धान्त को प्रतिपादित किया है। माल्थस के अनुसार

(1) मानव-जीवन मुख्यतः खाद्य सामग्री की पूर्ति पर आधारित है और इसके बिना मनुष्य का जीवन असम्भव है।

(2) यौन सम्बन्धी मूल प्रवृत्ति स्त्री-पुरूष दोनों में सार्वभौम है।

(3) इस मूल प्रवृत्ति के कारण सन्तानों का जन्म इतनी तेजी से होता है कि अन्य बाधाओं की अनुपस्थिति में किसी देश की जनसंख्या लगभग 25 वर्षो में दुगुनी हो जाती है परन्तु वहाँ के जीवन-निर्वाह के साधनों या खाद्य-सामग्री की उत्पत्ति इस अनुपात में नहीं हो पाती क्योंकि कृषि में क्रमागत ह्रास-उत्पत्ति नियम बहुत जल्दी लागू हो जाता हैं। माल्थस के अनुसार जनसंख्या ज्यॉमितिक विधि अर्थात् 1,2,4,8,16,32,64 आदि नियम के द्वारा तथा खाद्य-सामग्री अंकगणितीय विधि अर्थात् 1,2,3,4,5 आदि नियम के द्वारा नियंत्रित होती हैं। अतः एक समय ऐसा आ जाता है जब जनसंख्या प्रतिबन्धों के अभाव में इतनी बढ़ जाती है कि इसके जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद्य सामग्री उपलब्ध नहीं हो पाती।

इस रूप में माल्थस के अनुसार यदि किसी देश में बढ़ती हुई जनसंख्या को रोका न जाए तो उस देश की जनसंख्या वहां की खाद्य-सामग्री की पूर्ति की अपेक्षा अधिका तेजी से बढ़ती है। ऐसी विषम परिस्थिति में अति-जनसंख्या की स्थिति को खाद्य-सामग्री की पूर्ति के समान करने के लिए अर्थात जनसंख्या व खाद्य सामग्री में सन्तुलन स्थापित करने के लिए दो अवरोध क्रियाशील हो सकते हैं - (अ) नैसर्गित अवरोध और (ब) निवारक अवरोध। नैसर्गिक अवरोध वह है जो स्वयं प्रकृति समाज पर लागू करती है। जब देश में अति जनसंख्या की स्थिति होती है और खाद्यान्न की पूर्ति बहुत कम हो जाती है तो इस समस्या का समाधान प्रकृति करती है और कुछ प्राकृतिक अवरोध जैसे प्लेग, हैजा, चेचक

तथा ऐसी ही दूसरी भयंकर बीमारियाँ, अकाल, बाढ़, भुखमरी आदि क्रियाशील होते हैं जिनके कारण अतिरिक्त जनसंख्या नष्ट हो जाती है और उतने ही व्यक्ति रह जाते हैं जितनों के लिए देश में भोजन उपलब्ध है। निवारक या निरोधक अवरोध वे हैं जो स्वयं समाज के द्वारा सदस्यों पर लागू किये जाते हैं अर्थात जनता स्वयं इतनी समझदार हो जाए कि वह सन्तान निरोध, नैतिक संयम आदि निवारक अवरोधों की सहायता से जनसंख्या को अधिक न बढ़ने दे। इस प्रकार प्रथम अवरोध द्वारा मृत्यु-दर में वृद्धि करके तथा द्वितीय अवरोध द्वारा जन्म दर में कमी करके जनसंख्या व खाद्य सामग्री में सन्तुलन स्थापित किया जाता है।

3.1.2. सैडलर का जनसंख्यात्मक सिद्धान्त :- सैडलर के मतानुसार जैसे-जैसे नवीन पीढ़ी जन्म लेती जाती है या जनसंख्या में वृद्धि होती जाती है, दुबारा सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति की मानव जाति में कमी होती जाती है। आपने स्पष्ट किया है कि रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठने के साथ जनसंख्या वृद्धि में कमी होती जाती है और उच्च स्तर की चरम सीमा पर वृद्धि पूर्ण रूप से रूक जाती है। मानव जब शिकार करने की अवस्था में था तो उसमें सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति सर्वाधिक थी, परन्तु जैसे-जैसे वह इस स्तर से क्रमशः पशु-पालन की स्थिति, कृषि स्तर और अन्त में औद्योगिक स्तर पर आ पहुँचा वैसे-वैसे उनकी सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति घटती गई। इस प्रक्रिया में एक ऐसे आदर्श स्तर की कल्पना की जा सकती है जब मानव में सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति एक सन्तुलित अवस्था में होगी। साथ ही समाज के अधिकतर लोगों को अधिकतम सुख प्राप्त हो सकेगा। जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि और धन के पारस्परिक सम्बन्ध का उल्लेख करते हुए श्री सैडलर ने लिखा है कि अधिक धन का प्रभाव व्यक्ति की सन्तानोत्पत्ति की योग्यता पर काफी मात्रा में पड़ता है।

3.2 भारत में जनसंख्या वृद्धि की वर्तमान स्थिति

भारत में जनसंख्या काफी तेजी से बढ़ती जा रही हैं । इसका अनुमान अग्रलिखित तालिका के आधार पर सरलता से लगाया जा सकता है।

तालिका संख्या 3.2.1

जनगणना का वर्ष	जनसंख्या	वृद्धि का प्रतिशत
1901	23,83,96,327	-
1911	25,20,93,390	**+ 5.75**
1921	25,13,21,213	**- 0.31**
1931	27,89,77,238	**+ 11.00**
1941	31,86,60,580	**+ 14.22**
1951	26,10,88,090	**+ 13.31**
1961	43,92,34,771	**+ 21.51**
1971	54,81,59,652	**+ 24.80**
1981	68,33,29,097	**+ 24.66**
1991	84,63,02,688	**+ 23.85**
2001	1,02,70,15,247	**+ 24.27**

01 मार्च 1991 के सूर्योदय के समय भारत की जनसंख्या (1991 की जनगनणना के अनुसार) 84,63,02,688 थी। उपर्युक्त तालिका से यह भी स्पष्ट है कि 1981-91 की अवधि में भारत की जनसंख्या में 16 करोड़ 30 लाख की बढ़ोत्तरी हुई जो फ्रांस, ब्रिटेन या इटली की कुल आबादी से भी अधिक है। जहां विश्व की कुल जनसंख्या का 16 प्रतिशत भाग भारत के हिस्से में हैं, वही विश्व के कुल क्षेत्रफल का मात्र 24 प्रतिशत ही भारत के हिस्से में पड़ता है। भारत में मुम्बई, कोलकाता तथा दिल्ली दुनिया के 20 सर्वाधिक आबादी वाले नगरों में शामिल हैं और जनगणना 1991 की रिपोर्ट से प्राप्त आंकड़ो के

अनुसार ये तीन शहर जनसंख्या की दृष्टि से विश्व में क्रमशः छठे, दसवें व अठारहवें स्थान पर हैं।

सन् 2001 की जनगणना के अन्तरिम आंकड़ों के अनुसार 01 मार्च 2001 की आधी रात में भारत की जनसंख्या 1,02,70,15,247 हो गई है। इसमें पुरूषों की संख्या 53,12,77,078 और महिलाओं की संख्या 49,57,38,169 है। पिछले दस साल में भारत की आबादी में 18.10 करोड की बढ़ोत्तरी हुई है। यह जनसंख्या के आधार पर दुनिया के पांचवे बड़े देश ब्राजील की जनसंख्या के बराबर है। इस जनगणना में पुरूषों के मुकाबले महिलों की संख्या 927 के स्थान पर बढ़कर 933 हो गई हैं। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या प्रक्षेपण के अनुसार सन् 2050 तक भारत की जनसंख्या चीन की 1.5 अरब के मुकाबले 1.6 अरब हो जाएगी और विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश हो जाएगा। उसी प्रकार उत्तर प्रदेश में अगर मौजूदा रफ्तार से आबदी बढ़ी रही तो 30 साल में प्रदेश की आबादी दो गुनी हो जाएगी। जो इस समय 16,60,52,859 है।

इससे पूर्व कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि को रोकने के उपायों के बारे में विचार किया जाए, भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारणों का संक्षिप्त विवेचन आवश्यक है :

3.3 भारत में जनसंख्या की वृद्धि के कारक या कारण

भारत में जनसंख्या की वृद्धि के लिए उत्तरदायी कारकों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :

3.3.1 बढ़ती हुई जन्म-दर तथा घटती हुई मृत्यु-दर

भारत में बढ़ती हुई जन्म-दर तथा घटती हुई मृत्यु-दर दोनों ही बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए उत्तरदायी हैं। ज्यों-ज्यों भारत प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ता जा रहा है, त्यों-त्यों देश में मृत्यु दर कम होती जा रही है, क्योंकि प्रगति के साथ-साथ सार्वजनिक

स्वास्थ्य सेवाओं व चिकित्सा पद्धतियों की उन्नति हो रही है और बीमारियों की रोकथाम के उपाय बढ़ते जा रहे हैं। दूसरी ओर भारत में अब भी धर्म, प्रथा और परम्परा का बोलबाला है। प्रायः सभी लोग अपने लिए विवाह को अनिवार्य मानते हैं, बाल-विवाह का प्रचलन है, पुत्र का होना आवश्यक माना जाता है और गर्भ-निरोध का प्रयोग प्रायः अनुचित समझा जाता है। इसी कारण यहां जन्म-दर नहीं घट पाती। सन् 1998 में देश की जन्म दर 29.0 प्रति हजार तथा मृत्यु दर 10.0 प्रति हजार थी। इस प्रकार स्पष्ट है कि देश में अधिक जन्म-दर और कम मृत्यु दर के कारण जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है।

3.3.2 अधिक विवाह भारत एक धर्म-प्रधान देश रहा है और इसलिए यहां पर विवाह को एक आवश्यक धार्मिक संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल जनसंख्या का प्रायः 51 प्रतिशत भाग विवाहित है। इस देश में प्रति वर्ष 50 लाख से अधिक विवाह होते हैं और इस समय 14. 84 करोड से अधिक दम्पत्ति सन्तानोत्पादन में सक्षम है। ऐसी अवस्था में जनसंख्या का बढ़ना स्वाभाविक है।

3.3.3 बाल-विवाह भारत में जनसंख्या बढ़ने का महत्वपूर्ण कारण इस देश में बाल-विवाह का प्रचलन है। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार विवाह के समय पुरूषों की औसत आयु 22 वर्ष और स्त्रियों की 17 वर्ष थी। साथ ही 15 वर्ष और इससे अधिक आयु के पुरूषों में से केवल 21.5 प्रतिशत पुरूष अविवाहित थे और इसी आयु के वर्ग में केवल 5.6 प्रतिशत स्त्रियां अविवाहित थी। यद्यपि कानून द्वारा विवाह योग्य आयु लड़कियों के मामले में 18 वर्ष और लड़कों के मामले में 21 वर्ष कर दी गई है, फिर भी आज लाखों की संख्या में बाल-विवाह इस देश में होते हैं जिसका स्वाभाविक परिणाम जनसंख्या में तेजी से वृद्धि होना होता है।

3.3.4 पुत्र का अधिक महत्व भारतीय समाज में, विशेषकर हिन्दुओं में 'पुत्र' का महत्व अत्याधिक है। हिन्दुओं में यह विश्वास किया जाता है कि पुत्र की प्राप्ति के

बिना मोक्ष की प्राप्ति सम्भव नहीं है। पुत्र ही तर्पण और पिण्डदान के द्वारा पितरों की आत्मा को शान्ति प्रदान कर सकता है। साथ ही वंश की निरन्तरता को बनाए रखने के लिए भी पुत्र उत्पन्न करना आवश्यक समझा जाता है, चाहे वह सन्तान अनाहार या कुपोषण से पीड़ित होकर चल ही क्यों न बसे। कुछ भी हो, पुत्र या सन्तान प्राप्त करने की इच्छा के कारण देश की जनंसख्या में आवश्यक रूप से बढ़ोत्तरी हो जाती है। इस्लाम धर्म को मानने वालों में भी धर्म के नाम पर बुद्धि स्तर पर सन्तानोत्पत्ति के नितान्त मूढ़तापूर्ण क्रियाकलाप देखे जा सकते हैं।

3.3.5 निर्धनता जिस प्रकार अति-जनसंख्या निर्धनता का एक प्रमुख कारण है, उसी प्रकार निर्धनता भी जनसंखा में वृद्धि करने में सहयोग देती है। सरकारी आंकड़ो के अनुसार आज भी देश में 3,046.15 लाख व्यक्ति गरीबी की रेखा से निम्न स्तर पर जीवनयापन करने को विवश है। अनेक निर्धन मां-बाप इस कारण भी अधिक बच्चे उत्पन्न करते हैं कि उनके द्वारा उन्हें आर्थिक सहायता प्राप्त होगी। साथ ही, गरीब लोगों के पास मनोरंजन के अन्य कोई साधन भी नहीं होते । इस कारण यौन-सुख ही उनके लिए मनोरंजन का एकमात्र साधन रह जाता है। इसके अतिरिक्त गरीब जनता गर्भ-निरोधक उपायों को भी नहीं अपना पाती है क्योंकि उन पर कुछ न कुछ खर्च तो करना ही पड़ता है। जनसंख्या बढ़ाने में यह सभी तथ्य अपना महत्वपूर्ण योगदान करते हैं।

3.3.6 शिक्षा का अभाव हम यह जानते हैं कि भारत की जनता का एक बड़ा भाग निरक्षर है। कहने को तो हम यह कहते हैं कि इस देश में साक्षरता का स्तर वर्ष 1961 में 28.31 प्रतिशत से बढ़कर वर्ष 2001 में 65.38 प्रतिशत हो गया, किन्तु वास्तविकता यह है कि निरक्षरों की कुल संख्या बढ़कर 32.89 करोड़ हो गई जो स्वतन्त्रता के समय हमारी कुल जनसंख्या के बराबर है। ये निरक्षर लोग अनेक अन्धविश्वासों और कुसंस्कारों से घिर जाते हैं। वे अपने इस विश्वास को नहीं त्याग पाते कि बच्चे ईश्वर की देन हैं और जो बच्चा देता है वहीं उसके खाने-पीने की व्यवस्था भी करेगा। यह बात

धर्मभीरू महिलाओं के मामलें में विशेष रूप से सच है क्योंकि देश की 46 प्रतिशत महिलाएं निरक्षर है। इस अज्ञानता के कारण ही अधिकांश लोग गर्भ-निरोध व परिवार कल्याण के महत्व को भी नहीं समझते और उससे दूर भागते हैं। इससे भी जनसंख्या में वृद्धि नहीं रूक पाती है।

उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त सत्यम रवीन्द्र ने भारत में जनसंख्या विस्फोट के कुछ अन्य कारणों का भी उल्लेख किया है :

3.3.7 जलवायु इस देश में जनसंख्या विस्फोट के पीछे यहां की गर्म आबोहवा का पूरा हाथ है। यहां युवक-युवतियों में अल्पायु में ही प्रजनन क्षमता का विकास हो जाता है फलतः सन्तानोत्पत्ति के लिए उन्हें एक लम्बी अवधि मिल जाती है क्योंकि इस देश में विवाह भी जल्दी हो जाते हैं।

3.3.8 सरकारी कार्यक्रमों का समुचित क्रियान्वयन का प्रभाव

सरकार द्वारा घोषित जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रमों को केवल फाइलों तक सिमट जाना, अर्थात् उनके समुचित क्रियान्वयन के अभाव में देश की जनसंख्या नियन्त्रण की सरकारी सोचमात्र दिवास्वप्न है। यथार्थ है जनसंख्या विस्फोट । वास्तव में इसके पीछे राजनीतिक इच्छाशक्ति का अभाव है।

3.4 वृद्धों की जनसंख्या

चिकित्सा विकास के कारण मृत्युदर की कमी और औसत जीवन के लम्बा होने के परिणामस्वरूप वृद्ध व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि हो रही है। विश्व में लगभग 600 करोड़ की आबादी में 58 करोड़ लोगों की उम्र 65 वर्ष या इससे अधिक है। इनकी संख्या में वृद्धि लगातार होती जा रही है। एक अनुमान के अनुसार 20 वर्ष बाद बुजुर्गो की संख्या 100 करोड़ हो जाएगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ की रिपोर्ट के अनुसार वृद्ध व्यक्तियों का अनुपात विश्व जनसंख्या के प्रतिशत के अनुरूप ठोस रूप में बढ़ेगा। एक अध्ययन के अनुसार पूरे विश्व में 1950 के बाद व्यक्ति की औसत आयु में 20 वर्ष की वृद्धि हुई है। 1970 में 60 वर्ष से अधिक के लोगों की संख्या 30 करोड़ 40 लाख से अधिक थी। जो उच्च प्रतिव्यक्ति आय के देशों में वर्ष 2000 तक 13 और इससे ऊपर होगा।

यह प्रतिशत सामान्य आय वर्ग वाले देशों में 10 होगा जो वृद्ध व्यक्तियों के उच्च अनुपात वाले राष्ट्रों के लिए गम्भीर समस्या होगी। एक सर्वेक्षण के अनुसार यूरोप दुनिया का सबसे बूढ़ा क्षेत्र हैं यहां वृद्धों की संख्या कुल जनसंख्या का 5वॉ भाग है, उत्तरी अमेरिका, पूर्वी एशिया, लैटिन अमरीका और दक्षिणी एशिया में बुजुर्गो की संख्या क्रमशः 23, 12 और 10 प्रतिशत होने का अनुमान है। वर्ष 2020 में जापान में 31 प्रतिशत बुजुर्गो के साथ दुनिया का सबसे बूढ़ा राष्ट्र होगा। इसके बाद इटली, ग्रीस और स्विट्जरलैण्ड का स्थान होगा। वर्तमान में 20 विकासशील राष्ट्र ऐसे हैं जहां औसत आयु 72 वर्ष से अधिक है। कोस्टारिका, कोरिया और मलेशिया इसी श्रेणी के राष्ट्र हैं।

1947 में जब भारत स्वतंत्र हुआ था उस समय देश में औसत आयु 32 वर्ष थी, वर्तमान में यह 64 वर्ष है। इन 56 वर्षो में वृद्धों की संख्या में तीन गुना की बढ़ोत्तरी हुई है। वर्ष 2020 तक भारत में वृद्धों की जनसंख्या 14.10 करोड़ हो जाएगी।

हेल्पएज इण्डिया के एक सर्वेक्षण के अनुसार देश में इस समय बुजुर्गो की संख्या 7 करोड़ 70 लाख के करीब है। देश में 100 साल से ऊपर की उम्र की आबादी भी दो लाख के करीब है।

वर्ष 1981 की जनगणना के अनुसार वृद्धों की संख्या बढ़कर 5.48 करोड़ हो गयी अर्थात वर्ष 1981 और 1991 के मध्य 6.6 प्रतिशत की वृद्धि हो गयी।

विभिन्न जनगणना वर्षो में भारत में वृद्धों की संख्या

क्र.सं.	वर्ष	वृद्धों की संख्या (60+)
1	1961	2.56 करोड़
2	1971	3.26 करोड़
3	1981	4.45 करोड़
4	1991	5.48 करोड़
5	2001	7.70 करोड़

स्रोत - सेंसस ऑफ इण्डिया 2001

भारत में 80 प्रतिशत बुजुर्ग गांवों में निवास करते हैं। 60 वर्ष से अधिक आयु वर्ग में महिलाओं की संख्या अधिक है। औसत उम्र के संदर्भ में पुरूषों की तुलना में महिलाएं आगे हैं।

कुल जनसंख्या में वृद्धजनों की जनसंख्या एक महत्वपूर्ण घटक है। यह ऐसा घटक है जिसकी अपनी निजी विशेषताएं और निजी समस्याएं हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ ने 1983 में दुनिया के देशों के वृद्धजनों की समस्याओं की ओर सचेत करते हुए योजनाएं बनाने का सुझाव दिया था, अब जब समस्या गंभीर हो रही है तब संयुक्त राष्ट्र संघ से वर्ष 1999 को वृद्ध वर्ष के रूप में मनाकर वृद्धजनों की जनसंख्या की ओर दुनिया के देशों का ध्यान पुनः आकृष्ट किया है।

विगत दशकों से स्वास्थ्य सुविधाओं में वृद्धि, गंभीर बीमारियों से बचने के लिए कारगर इलाज की खोज के फलस्वरूप मृत्यु-दर में गिरावट आदि के कारण वृद्धजनों की जनसंख्या में दिनों-दिन वृद्धि होती जा रही है। विश्व स्तर पर 7.1 प्रतिशत वार्षिक की दर से जनसंख्या वृद्धि हो रही है जबकि 55 वर्ष से अधिक आयु वाले वृद्धजनों की जनसंख्या में 2.2 प्रतिशत की दर से वृद्धि हो रही है। भारत इसका अपवाद नहीं है। 1947 के भारत की जनसंख्या में 170 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जबकि इस अवधि में 60

वर्ष से अधिक आयु वाले व्यक्तियों की जनसंख्या में 270 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अस्सी वर्ष से अधिक आयु वाली जनसंख्या की वृद्धि दर और भी अधिक है।

भारत ही नहीं लगभग सभी विकासशील देशों में वृद्धजनों की जनसंख्या बढ़ रही है। 1982 में रोजर्स ने भविष्यवाणी की थी कि आगामी कुछ ही दशकों में विकासशील देशों में वृद्धजनों की जनसंख्या में अप्रत्याशित वृद्धि होगी तथा 2005 तक संसार के 70 प्रतिशत वृद्ध इन्हीं देशों में पाए जायेंगे।

1901 में भारत में वृद्धजनों की कुल जनसंख्या 1 करोड़ 20 लाख थी जो 1991 में बढ़कर 5 करोड़ 59 लाख हुई। सन् 2001 की जनगणना के अनुसार वृद्धों की जनसंख्या 7 करोड़ 59 लाख है। संयुक्त राष्ट्र संघ के अध्ययनों के अनुसार भारत में सन् 2030 में वृद्धजनों की कुल जनसंख्या 19 करोड़ 60 लाख हो जायेगी। स्वतंन्त्रता के बाद भारत में वृद्धजनों की जनसंख्या का प्रतिशत निम्नवत् रहा है ।

तालिका संख्या 3.4.1

कुल जनसंख्या में वृद्धजनों का प्रतिशत

कुल जनसंख्या में वृद्धजनों का प्रतिशत						
वर्ष	पुरूष			महिला		
	60+	65+	70+	60+	65+	70+
1950	5.2	2.9	1.7	6.1	3.8	2.8
1960	5.5	3.3	1.7	5.8	3.5	1.9
1970	5.9	3.6	1.9	6.0	3.7	2.0
1980	6.4	4.0	2.2	6.6	4.1	2.3
1990	7.1	4.5	2.5	7.6	4.8	2.8
2000	8.0	3.5	3.0	8.9	5.9	3.4

श्रोत - डेमोग्राफी इण्डिया अंक 23

तालिका संख्या 3.4.2

भारत में आयु समूह के अनुसार विभिन्न जनगणना वर्षो में वृद्ध व्यक्तियों की जनसंख्या

क्रं.	आयु समूह	1961	1971	1981	1991	2001
1	30-49	84225385	104259686	144664875	189493491	247995402
2	50-69	43034869	54734594	69495465	88193569	74977640
3	70 से ऊपर	8620400	11324450	15485404	2174165	2298587

जनगणना 2001

तालिका संख्या 3.4.3

भारत में आयु समूह के अनुसार विभिन्न जनगणना वर्षो में वृद्ध व्यक्तियों की जनसंख्या

क्रं.	आयु समूह	कुल व्यक्ति	कुल स्त्री	कुल पुरूष	नगरीय	ग्रामीण
1	30-49	35309280	17127024	18182256	8045534	27263746
2	50-69	16628691	7901113	8727578	1712450	7015128
3	70 से ऊपर	4450446	2007078	2443368	767847	3682599

जनगणना 2001

तालिका संख्या 3.4.4

भारत वर्ष में आयु समूह के अनुसार विभिन्न जनगणना वर्षो में युवाओं की जनसंख्या

क्रं.	आयु समूह	1961	1971	1981	1991	2001
1	30-49	35882536	47468232	64138808	79034929	100215890
2	50-69	37332553	43101354	57337858	74472704	89764132
3	70 से ऊपर	36581924	40820450	50724615	69239258	83422393

जनगणना 2001

अध्याय–4

अन्तर-पीढ़ी संघर्ष : पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में

- जाति एवं धर्म
- शिक्षा
- आदिम अर्थ व्यवस्था
- औद्योगिक अर्थ व्यवस्था
- औद्योगिक क्रान्ति
- अन्तर पीढ़ी संघर्ष : सारणीयन एवं विश्लेषण

4. अन्तर-पीढ़ी संघर्ष : पारिवारिक सामाजिक एवं आर्थिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में

पूर्व अध्याय में अन्तर-पीढ़ी की जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य का विवेचन किया गया है । प्रस्तुत अध्याय में अन्तर-पीढ़ी संघर्ष की विवेचना पारिवारिक , सामाजिक एवं आर्थिक संरचना के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

भारत अपनी भौगोलिक सीमाओं के अन्दर विभिन्न, भाषाओं, मूल्यों और संस्कृति के विभिन्न वर्गो को समाए हुए है । भारतीय समाज हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाइयों के साथ ही अन्य धार्मिक समूहों के अतिरिक्त विभिन्न जातीय समूहों में बटॉ हुआ है।

देश के 80 प्रतिशत लोग ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्रों में आवासित है। शेष 20 प्रतिशत लोग जिन्हें शहरी कहा जाता है, उनका अच्छा खासा हिस्सा गन्दगी एवं झोपड़ी वाले उपनगरीय भू-भाग में आवासित है।

अधिकांश भारतीय निर्धनता एवं अशिक्षा जैसी समस्याओं से ग्रसित है। ग्रामीण एवं जनजातीय क्षेत्र के लोगों की आर्थिक क्रियाएं मुख्य रूप से कृषि, जंगली क्षेत्रों से सम्बन्धित व्यवसाय एवं कौशल पूर्ण रोजगार से सम्बन्धित है।

निःसन्देह आर्थिक एवं सांस्कृतिक कार्य तथा विश्वास वृद्धों के प्रति दृष्टिकोण को प्रभावित करते हैं । इन सबमें आर्थिक तथ्य प्रभावपूर्ण एवं निर्णायक कारक होता है।

विभिन्न राष्ट्रों में वृद्ध व्यक्तियों का परिवार में सम्मान पूर्ण स्थान रहा है उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखा जाता रहा है वे समाज में उच्च सम्मान पाते रहे हैं। वृद्ध व्यक्ति विशेषकर दक्षिण एशियाई हिन्दू समाज में जो भारत एवं नेपाल में बहुतायत है जो विशिष्ट स्थान रखते हैं। बुजुर्ग या वृद्धों के सम्मान के कारण ही हिन्दू समाज ने मूल्यों,

चारित्रिक पद्धति सामाजिक संगठन एवं अनुशासन जैसे सामाजिक व्यवस्था के महत्वपूर्ण घटकों की खोज की है। सामाजिक व्यवस्था का यह आदर्श जो वृद्ध व्यक्तियों के सामाजिक मूल्यों को परिचित कराता है प्रतिदिन के जीवन में सांस्कृतिक क्रियाकलापों में अभिव्यक्त होता है।

यह व्यवस्था हिन्दू समाज की नैतिक सामाजिक वर्णाश्रम व्यवस्था से अलग नहीं है। वृद्ध व्यक्ति का ज्ञान और अनुभव हमारे हिन्दू धर्मशास्त्रों में व्यक्त होता है। वास्तव में विद्वता का सम्पूर्ण वैदिक वंशानुक्रम वर्णो से गुरू शिष्य परम्परा के रूप में हस्तान्तरित होता आया है। वैदिक ऋषि और प्रथम काव्य वैदिक श्लोंको के लेखक ऐसे व्यक्ति माने जाते हैं जो उम्र एवं वृद्धि के साथ विभूषित और चांदी की तरह सफेद दाढ़ी की धारा से चित्रित किए गए हैं। उनमें से कुछ ऋषि दोहरे जन्म की जातियों के वंश कुल (गोत्र व प्रवर) के संस्थापक पूर्वज माने जाते हैं जिनसे वंशावली का निरन्तर सम्बन्ध स्थापित किया गया है।

एक हिन्दू परिवार का मुखिया प्रतिदिन पूजा के रूप में अपने पूर्वजों को नैवेद्य चढ़ाकर प्रसन्न होता है और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता है इस तरह से परम्परा एवं निरन्तरता की धारणा युग की पूजा और सम्मान के साथ गहरायी से जुड़ी होती है। वृद्धावस्था एक घटना के रूप में सामाजिक एवं धार्मिक अवसरों के द्वारा चिहिंत है।

भारत के गांवों में गांव के वृद्ध व्यक्ति एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं। उम्र और सम्मान के आधार पर ग्रामीण विवादों विशेषकर जातिय संघर्ष सम्पत्ति के विवाद जैसे मुद्दों के निर्णय हेतु ग्राम पंचायते गठित होती हैं।

ये पंचायते सामाजिक जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। वृद्ध भारतीय सामाजिक संरचना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं वृद्ध व्यक्ति जो घर का मुखिया होता है उसके निर्णयों पर प्रश्न नहीं उठाया जाता है वह सम्पत्ति का मालिक होता है, वह पारिवारिक गतिविधियों से सम्बन्धित निर्णय करता है, पारिवारिक दायित्वों का निर्वहन करने वाला होता है। पारिवारिक सदस्यों की उम्र का ध्यान दिये बिना उन्हें एक छत के नीचे लाता है और मृत्यु तक उन्हें अपने अनुभवों के आधार पर मार्ग दर्शन देता रहता है और

अपने कर्तव्यों का निर्वहन करता है। भारत जैसे राष्ट्र में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, जीवन के अधिकांश क्षेत्रों में उनकी संख्या के अनुपात से भी अधिक वृद्धों का प्रभाव होता है।

भारतीय सामाजिक आदर्श और मूल्य वृद्ध या वृद्ध व्यक्तियों का ध्यान रखने एवं उनके सम्मान करने पर जोर डालते हैं। परिणामस्वरूप परिवार के वृद्धों की चिन्ता परिवार के सदस्यों द्वारा की जाती है।

4.1 जाति एवं धर्म

सामाजिक विभिन्नता तथा उनके साथ ही होने वाले समूहों तथा व्यक्तियों की प्रस्थिति का प्रथक्करण मानव समाज का एक विशाल लक्ष्य है। बहुसंख्यक समुदायों में यह प्रस्थिति व्यक्ति के उन क्षेत्रों के किए गए क्रिया-कलापों की उपलब्धता पर निर्भर करती है जिनको वे समुदाय अधिक प्रदान करते हैं ऐसे क्रिया-कलापों का विस्तार किन्हीं प्रकार की अलौकिक अनुभूतियों की सामर्थ्य से लेकर धनोपार्जन की योग्यता तक फैला हुआ है। इस विभिन्नता के प्रत्यक्ष चिन्ह वेशभूषा, व्यवसाय तथा भोजन सम्बन्धी कुछ समूहों के विशेषाधिकार एवं दूसरों की असमर्थताएं हैं।

अन्य समुदायों में व्यक्ति की प्रस्थिति जन्म से निर्धारित होती है। भारतीय यूरोपियन भाषायें बोलने वाले लोग जन्म द्वारा प्रस्थिति के इस सिद्धान्त को अन्य लोगों की अपेक्षा और भी अधिक सीमा तक ले गये और न केवल समाज के मध्य विभिन्न समूहों की संख्या में ही अपितु उनके अधिकारों तथा असमर्थताओं में था। उन्होनें तो ऐसे आदेश दे दिये कि एक समूह का सदस्य अपने ही समूह में विवाह करेगा। इस प्रकार यह देखा गया कि हिन्दू व्यवस्था इस विषय में एक मात्र ऐसी है जिसमें कुछ समूहों का स्पर्श रूप में तथा कुछ का अस्पर्श रूप मे वर्गीकरण किया ।

भारत में पुष्पित तथा पल्लवित होने वाली अनेक संस्कृतियों में से भारतीय आर्य संस्कृति के साहित्यिक अभिलेख सबसे प्राचीनतम है अपितु उनमें उन कारकों का प्रथम उल्लेख तथा सतत् प्रवाहमान इतिहास उपलब्ध होता है जो जाति का निर्माण करते हैं।

भारतीय समाजिक संस्थाओं में जाति एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है। आदिकाल से ही भारत में जाति प्रथा का प्रचलन रहा है। पश्चिमी देशों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार वर्ग रहा है तो भारत में जाति एंव वर्ण ।

डॉ0 आर0एन0 सक्सेना का मत है कि जाति हिन्दू सामाजिक संरचना का एक मुख्य आधार रहा है जिससे हिन्दुओं का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन प्रभावित होता रहा है। हिन्दुओं के सामाजिक जीवन के किसी भी क्षेत्र का अध्ययन बिना जाति के विश्लेषण के अपूर्ण ही रहता है।

श्रीमती इरावती कर्वे का भी मत है कि यदि हम भारतीय संस्कृति के तत्वों को समझना चाहते हैं तो जातिप्रथा का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

यही कारण है कि समय-समय पर इतिहासकारों, भारतशास्त्रियों, जनगणना आयुक्तों समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों एंव अन्य देशी तथा विदेशी विद्वानों ने जाति प्रथा का अध्ययन किया और अपने दृष्टिकोण प्रकट किए। भारत में जाति की व्यापकता एवं महत्व को स्पष्ट करते हुए प्रो0डी0एम0 मजूमदार लिखते हैं जाति व्यवस्था भारत में अनुपम है। सामान्यतः भारत जातियों एवं सम्प्रदायों की परम्परात्मक स्थली माना जाता है। ऐसी मान्यता है कि जाति यहां की हवा में धुली मिली है और जहां तक मुसलमान तथा ईसाई भी इससे अछूते नहीं बचे हैं।

भारतीय समाज धर्म-प्रधान समाज कहलाता रहा है, यहां धर्म को प्रत्येक क्षेत्र में महत्ता प्राप्त रही है। धर्म व्यक्ति, परिवार, समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन को अगणित रूपों में प्रभावित करता रहा है। यहॉं भौतिक सुख प्राप्ति को जीवन का परमलक्ष्य न मानकर धर्मसंचय को प्रधानता दी गयी है। भारतीय समाज व्यवस्था मूलतः धर्म पर आधारित है। यहॉं धर्म के आधार पर जीवन के समस्त कार्यो की व्यवस्था करने का प्रयास किया गया

है। भारतीय समाज में व्यक्ति ज्ञान भक्ति अथवा कर्म के द्वारा परमेश्वर के स्वरूप को समझाने का प्रयत्न करता रहा है।

डा0 राधाकृष्णन ने लिखा है - धर्म की अवधारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन अनुष्ठानों एवं गतिविधियों को करता है जो मानवीय जीवन को गढ़ती एवं बनाएं रखती है। हमारे प्रथक हित होते हैं, विभिन्न इच्छाएं होती हैं और विरोधी आवश्यकताएं होती है जो बढती है और बढ़ने की दशा में परिवर्तित हो जाती है उन सभी को घेर घार कर एक समूचे रूप में प्रस्तुत कर देना धर्म का प्रयोजन है।

4.2 शिक्षा

मानव द्वारा आदिकाल से ही ज्ञान का संचय किया जाता रहा है प्रत्येक नयी पीढ़ी को पुरानी द्वारा कुछ ज्ञान सामाजिक, विरासत से प्राप्त होता है और कुछ वह स्वयं ज्ञान में वृद्धि करता है। मानव की प्रत्येक पीढ़ी में सीखने की प्रक्रिया और हस्तान्तरण द्वारा ज्ञान की वृद्धि गयी है। ज्ञान की यह परम्परा श्रंखला ही शिक्षा है जिसके द्वारा मानव ने अपनी मानसिक, अध्यात्मिक और सामाजिक प्रगति की है। शिक्षा ने ही मानव को पशु से ऊँचा उठाया है और श्रेष्ठ संस्कृतिक प्राणी बनाया है।

चीनी सन्त कन्पयूशस ने कहा था - अज्ञानता एक ऐसी रात्रि के समान है जिसमें न चांद है न तारें।

शिक्षा के उद्देश्य ज्ञान रूपी प्रकाश को प्राप्त कर अज्ञान रूपी अन्धेर रात्रि के अन्धकार को दूर करना है। शिक्षा के अभाव में ज्ञान और विज्ञान दोनों का अभाव होगा। ज्ञान एवं सांस्कृतिक विरासत के हस्तान्तरण का कार्य शैक्षणिक संस्थाओं द्वारा किया जाता है ज्ञान एवं सांस्कृतिक सामाजिक विरासत को हस्तान्तरित करने वाली संस्थाएं शिक्षण संस्थाएं

कहलाती हैं। फिलिप्स कहते हैं - कि शिक्षा वह संस्था है जिसका केन्द्रीय तत्व ज्ञान का संग्रह है।

आदिम एवं आधुनिक समाजों में पायी जाने वाली शिक्षा की पद्धति, स्वरूप, साधन एवं उद्देश्य में अन्तर पाया जाता है। आदिम समाजों में शिक्षा तथा संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। आदिम समाजों में शिक्षा का तात्पर्य पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने से नहीं था बल्कि समाज एवं संस्कृति से अनुकूलन स्थापित करने से था। आदिम समाजों में शिक्षा प्रदान करने वाली विशिष्ट शिक्षण संस्थाएं नहीं थी। परिवार पड़ोस नातेदारी समूह एवं अनौपचारिक साधनों द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी। आदिम समाजों में शिक्षा मौखिक निर्देशों, दन्त कथाओं, लोकगीतों, संगीत एवं आपसी वार्तालाप द्वारा दी जाती थी और यह कार्य प्रमुख रूप से परिवार द्वारा ही किया जाता था। इन समाजों में धर्म एवं नैतिकता की प्रधानता थी। वृद्ध व्यक्ति भी सुझाव, आलोचना, हंसी-मजाक, दण्ड-पुरूस्कार के द्वारा बच्चे को शिक्षा देते हैं।

आदिम शिक्षा सार्वभौमिक न होकर केवल कुछ लोगों/ वर्गों तक ही सीमित थी। भारत में केवल द्विज जातियों का ही पठन पाठन एवं शिक्षा का अधिकार प्राप्त था। आदिम समाजों में शिक्षा का एक तरीका अवलोकन द्वारा सीखना भी था।

मैलिनोवस्की कहते हैं कि टिबियाण्डा द्वीप में बच्चे यौन क्रियाओं का प्रशिक्षण बचपन में ही माता-पिता को यौन क्रिया में लिप्त देखकर कर लेते थे।

किन्तु आधुनिक समाजों में औद्योगीकरण के कारण शिक्षा, शिक्षण एवं संस्थाओं के स्वरूप में भिन्नता आयी है। अब शिक्षा सार्वभौमिक बन गयी है और सभी जातियों एवं वर्गों के लिए उपलब्ध है। शिक्षा देने का कार्य अब औपचारिक रूप से शिक्षण संस्थानों द्वारा किया जाता है। शिक्षा में विशेषीकरण की प्रवृत्ति पनपी है। आज चिकित्सा, कानून, व्यापार, विज्ञान एवं तकनीकी का ज्ञान आदि की शिक्षा देने वाली विभिन्न संस्थाएं हैं। शिक्षा में धर्म एवं नैतिकता का प्रभाव कम हुआ है, शिक्षा अब धर्म निरपेक्ष हो गयी है ।

शिक्षा वैयक्तिक के स्थान पर समूहवादी हो गयी है। लिखित रूप में शिक्षा कार्य अधिक किया जाने लगा है।

बोटोमोर का कथन है कि आदिम एवं पूर्व कालीन समाजों में शिक्षा का सम्बन्ध अधिकांशतः रहन-सहन के तरीकों से ही था जबकि आधुनिक समाजों में शिक्षा का विषय साहित्य कम और वैज्ञानिक अधिक है। प्राचीन समाजों में शिक्षा का तात्पर्य संग्रहित ज्ञान को हस्तान्तरित करने में था जबकि आधुनिक शिक्षा वैज्ञानिक ज्ञान में परिवर्तन में भी रूचि रखती है।

शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति को समाज के मूल्यों, मानदण्डों, नियमों, कानूनों एवं आदर्शो आदि का ज्ञान कराया जाता है। समाज द्वारा निर्धारित एवं स्वीकृत नियमों का पालन करने से समाज में नियंत्रण, एकता एवं समरूपता तथा सामंजस्य बना रहता है।

आज की शिक्षा तर्क एवं विज्ञान पर आधारित है। वह मानव मस्तिष्क का विकास करती है, ज्ञान के द्वार खोलती है, मनुष्य को चिन्तनशील बनाती है। बुद्धिमान एवं बलवान व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उचित एवं अनुचित में भेद करें, समाज सम्मत व्यवहार करें। शिक्षा व्यक्ति के गुणों में वृद्धि करती हैं। ज्ञान एवं सामाजिक प्रगति एवं नियंत्रण दोनों के लिए ही आवश्यक है।

तृतीय अध्याय में वृद्ध व्यक्तियों के सामाजिक स्वरूप का तर्कपूर्ण विवेचन किया गया है। इस अध्याय में आदिम अर्थव्यवस्था, कृषि अर्थव्यवस्था, औद्योगिक क्रान्ति, औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था, वृद्ध व्यक्तियों के आय के स्रोत, आय के स्रोतों से वृद्धों की सम्बद्धता, उनको उपलब्ध सुविधाओं तथा वृद्धों की आर्थिक निर्भरता की विवेचना की जाएगी।

समाज की सभी अवस्थाओं में मानव भोजन, वस्त्र, निवास और सुरक्षा की आवश्यकता अनुभव करता रहा है। समाज में आर्थिक क्रियाएं और आवश्कताएं मूलभूत हैं। मनुष्य अपनी आवश्कताओं की पूर्ति इच्छानुसार नहीं कर सकता है। समाज के सदस्य के रूप में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति वह परम्पराओं, नियमों तथा कार्य प्रणालियों के

अनुरूप करता है। संस्था का अर्थ मान्य नियम और कार्य पद्धति से है। इस तरह आर्थिक क्रियाओं और आवश्यकताओं से सम्बन्धित परम्परा, नियम, प्रणाली और कार्य पद्धति को आर्थिक संस्था की संज्ञा दी जाती है।

आर्थिक आवश्यकताओं की प्रबन्ध और आपूर्ति से सम्बन्धित कार्यो को मानव का आर्थिक पक्ष माना जाता है।

4.3 आदिम अर्थव्यवस्था

आदिम अर्थ व्यवस्था में प्राकृतिक पर्यावरण पर निर्भरता पाई जाती है। आर्थिक क्रियाएं भौगोलिक परिस्थितियॉ जैसे वर्षा ,धूप, बाढ़ आदि पर निर्भर करती है। हर्षविट्स और लोवी ने इसका विस्तार से विवेचन किया है। आदिम समाजों में आर्थिक क्रियाएं और श्रम विभाजन की पद्धति काफी सरल थी। श्रम विभाजन आयु और लिंग पर आधारित था। व्यक्तिगत संपत्ति की धारणा अत्यन्त आरम्भिक अवस्था में थी। परिवार, नातेदारी, समूह और उत्पादन के साधनों के स्वामी थे।

आदिम समाज अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आत्मनिर्भर थी अतः उसमें व्यापार की पद्धति का विकास नहीं हुआ था। इन समुदायों में भेंट देने की प्रथा एक ओर तो सामाजिक दायित्व के रूप में विकसित हुई और दूसरी ओर एक प्रकार से यह आदिम व्यापार का भी एक रूप था। आतिथ्य एक प्रकार की आर्थिक सेवा का अंग था। आखेट तथा खाद्य संकलन में जो कुछ भी बच सकता था, उसने आदिम समाजों में निम्नलिखित प्रथाएं विकसित हुई :-

1. उपहार अथवा भेंट
2. आतिथ्य
3. मुफ्त उधार लेना

4. मुफ्त उधार देना

5. सामान्य उपयोग

इन समुदायों में संपत्ति की तुलना में व्यक्तिगत अथवा पारिवारिक सम्मान अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था।

4.4 कृषि अर्थव्यवस्था

आदिम समुदायों में धीरे-धीरे जंगली जानवरों तथा पौधों के स्थान पर मनुष्य ने जमीनों का उपयोग तथा पौधों को उगाने का ज्ञान विकसित किया। इस स्थिति में भी भूमि पूरे वंश समूह अथवा समुदाय की संपत्ति थी। धीरे-धीरे व्यक्तिगत संपत्ति की अवधारणा विकसित हुई। समुदाय में सभी लोग खेती के काम घर बनाने, जंगल को काटने अथवा आखेट में एक दूसरे से सहयोग करते थे। पशुओं और पौधों के पालन तथा सामूहिक प्रयत्न से जंगल की सफाई के कारण कृषि व्यवस्था विकसित हुई। कृषि व्यवस्था के साथ हल का विकास हुआ। मानवीय श्रम के साथ-साथ पशुओं के श्रम का उपयोग करना भी मनुष्य ने सीखा। उपयोग से अधिक उत्पादन की शुरूआत हुई। इस अतिरिक्त उत्पादन के कारण एक परिवार अथवा एक समुदाय का दूसरे परिवारों और समुदायों से अपने अतिरिक्त उत्पादन का विनियम आरंभ हुआ। विनियम के लिए बिचौलियों की प्रथा विकसित हुई। कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था की निम्नलिखित विशेषताएं थी :

1. उत्पादन के मुख्य स्रोत के रूप में भूमि की उपयोग
2. भूमि का सामुदायिक, पारिवारिक अथवा व्यक्तिगत स्वामित्व
3. अतिरिक्त उत्पादन के लिए पारस्परिक विनिमय की पद्धति का विकास
4. नियमित हाटों का विकास
5. स्थानीय व्यापार के केन्द्रों के रूप में ग्रामीण बाजारों का विकास
6. ग्रामों के मुखियों अथवा कई ग्रामों के सरदारों की प्रथा का विकास

खेतों, हस्तशिल्प, पूर्व औद्योगिक नगर और क्षेत्रीय एकीकरण के फलस्वरूप सामंतवाद की नींव पडी। इस व्यवस्था में उत्पादन की इकाई परिवार थी। भूमि उत्पादन का मुख्य स्रोत थी। सामंत के पास आर्थिक और राजनीतिक स्वामित्व दोनों थे। इस व्यवस्था में केन्द्रीय सत्ता नहीं थी। भूमि और सम्पत्ति के स्वामी ग्राम समुदायों और किसानों से रूपया तथा सेवाएं प्राप्त करते थे। इसके बदले में वे आक्रमणकारियों तथा लुटेरों से ग्रामीण एवं किसानों की रक्षा करते थे। इस व्यवस्था में श्रमविभाजन का स्वरूप और भी विकसित हुआ।

उत्पादित वस्तुओं की विविधता बढ़ी। नगरों का विकास हुआ। इन सामंतो और स्वामियों के राजनीतिक प्रभाव क्षेत्रों से धीरे-धीरे आधुनिक राष्ट्र पर आधारित राज्यों का उदय हुआ। भूमि पर आधारित कृषि अर्थव्यवस्था में धातुओं का उपयोग आरंभ हुआ। इसमें मुख्य थे :-

1. तांबा
2. चांदी
3. सोना
4. लोहा

लकड़ी और लोहे के कारण पहिए पर चलने वाले रथों और बैलगाड़ियों का विकास हुआ। बैल, घोड़ों, ऊँटों एवं भैसों की शक्ति का उपयोग कृषि, यातायात और व्यापार आदि के लिए हुआ। विश्व के अनेक हिस्सों में हाथियों का भी उपयोग हुआ। उत्पादन और यातायात में पशुओं के उपयोग से आदमी के श्रम की बचत हुई।

सामाजिक संरचना के श्रम विभाजन के विकास के साथ सामंत, कृषक, शिल्पी कृषि श्रमिक अथवा दास आदि वर्गो की उत्पत्ति हुई। कृषि के विस्तृत क्षेत्र, अतिरिक्त उत्पादन, हस्तशिल्प के विकास और राजनीतिक सत्ता के विस्तार के साथ व्यापारिक और पूर्व औद्योगिक नगरों की अर्थव्यवस्था विकसित हुई।

आदिम और कृषि पर आधारित दोनों अर्थव्यवस्था भौगोलिक पर्यावरण पर निर्भर थी। दोनों में वस्तुओं एवं सेवाओं के विनियम के जरिए तथा जनरीतियों से होता था। कृषि पर अधारित व्यवस्था में भाषा, संगठित धर्म तथा स्थायी ठिकानों का विकास हुआ। इस काल में गृह निर्माण की पद्धति में काफी परिष्कार हुआ। बड़े भवन और किले बनाने की क्षमता विकसित हुई। संगीत के सुरो और वाद्यों का विकास हुआ। नृत्य और नाटक की कला विकसित हुई।

इस तरह कृषि पर आधारित अर्थव्यवस्था में सांस्कृतिक क्षेत्र में भी काफी परिष्कार आया। पाल वाली नावों के कारण समुद्रों को पार कर दूर के देशों से व्यापार की पद्धति इस काल मं विकसित हुई। इस काल में आर्थिक क्रिया की एक अन्य महत्वपूर्ण विनिमय के लिए मुद्रा का प्रचलन था।

4.5 औद्योगिक क्रान्ति

कृषि हस्तशिल्प वाणिज्य में अतिरिक्त उत्पादन से हुए लाभ तथा सामंती राजनीतिक पद्धति द्वारा स्थापित शांति और व्यवस्था के चलते यूरोप में औद्योगिक क्रांति की शुरूआत हुई। सामंती व्यवस्था में कृषि और शिल्प के औजार छोटे थे। इनमें मानवीय श्रम अधिक लगता था। उत्पादन में समय भी अधिक लगता था और उत्पादन की मात्रा सीमित होती थी।

औद्योगिक क्रान्ति और शुरूआत के मूल में मानव तथा पशु श्रम के स्थान पर यंत्रों की शक्ति का उपयोग था। औद्योगिक क्रान्ति के साथ विशाल यंत्र कोयला से उत्पादित भाप द्वारा संचालित होने लगे। भाप की जगह प्रायः एक सदी बाद बिजली ने ले ली। उत्पादन में यंत्रों के बढ़ते प्रयोग के कारण उत्पादन, यातायात और वितरण की प्रणाली में इतने व्यापक परिवर्तन हुए कि इस प्रक्रिया को औद्योगिक क्रान्ति कहा जाता है। औद्योगिक

क्रांन्ति ने आधुनिक अर्थव्यवस्था, इसकी उत्पादन पद्धति, संगठनों और नए मानवीय संबंधों को जन्म दिया है।

यहां एक प्रश्न विचारणीय है कि औद्योगिक क्रांन्ति की शुरूआत इग्लैण्ड और पश्चिमी यूरोप में ही क्यों हुई ? इस प्रश्न का उत्तर कार्ल मार्क्स और मैक्स बेबर ने दिया है।

कार्ल मार्क्स के अनुसार जर्जर सामंती समाज के पतन के साथ ही औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था का अभ्युदय हुआ। इसके विकास के पीछे सामंती व्यवस्था के क्रान्तिकारी तत्वों के अतिरिक्त कुछ अन्य सामाजिक परिस्थितियां भी थी। अमेरिका की खोज एवं अफ्रीका के दक्षिणी किनारे से होकर यातायात की शुरूआत ने उभरते हुए पूजीवादी वर्ग के लिए उद्योगों और बाजार के नए द्वारा खोल दिए। भारत और चीन के बाजार, अमेरिका का उपनिवेशीकरण, अन्य उपनिवेशों से व्यापार, विनिमय और वस्तुओं के उत्पादन के साधनों में वृद्धि ने वाणिज्य, नौ परिवहन तथा उद्योग को ऐसी तेज गति से विकसित किया जो इतिहास में इसके पहले कभी नहीं हुआ था।

नए बाजारों की बढ़ती आवश्यकता की पूर्ति, श्रणियों के चतुर्दिक संगठित सामंती उत्पादन प्रणाली के द्वारा संभव नहीं थी। सामंती उत्पादन की पद्धति यंत्रों पर आधारित उत्पादन की व्यवस्था के सम्मुख न टिक सकी। परिवार तथा श्रेणी पर आधारित श्रम विभाजन कारखानों के श्रम विभाजन के साथ ही लुप्त हो गया। भाप और यंत्रों के कारण औद्योगिक उत्पादन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। मार्क्स की मान्यता है कि अठारहवीं सदी में घटित इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति ने संपूर्ण विश्व को बाजार में बदल दिया। सामंती व्यवस्था को समाप्त कर पूंजीपति वर्ग के मार्क्स के अनुसार अत्यन्त क्रान्तिकारी भूमिका निभाई। इस व्यवस्था के अन्तर्निहित दोष भी है। यह व्यवस्था मुक्त व्यापार और शोषण पर आधारित है। इस व्यवस्था ने अब तक के अत्यन्त सम्मानित पेशेवरों जैसे डाक्टर, वकील, धर्म, पुरोहित, कृषि तथा वैज्ञानिक को वेतन पाने वाले मजदूर में बदल

दिया है। इसने उत्पादन के साधनों उत्पादन के सम्बन्धों और फलस्वरूप समस्त सामाजिक संबंधों को ही बदल दिया है।

मार्क्स के अनुसार उपनिवेशों के शोषण, यातायात की नई सुविधाओं, उद्योग और वाणिज्य के विकास तथा सामंती व्यवस्था के अंतर्विरोध के कारण औद्योगिक पूंजीवादी व्यवस्था अठारहवीं सदी के मध्य के इंग्लैण्ड में विकसित होने लगी। इसके बात तो विश्व बाजार की लूट और उपनिवेशों के शोषण के चलते औद्योगिक विकास की इस प्रक्रिया का कोई अंत ही नहीं था। यह व्यवस्था पूंजी और लाभ की भावना पर आधारित है अतः इसे पंजीवादी व्यवस्था कहते हैं। मार्क्स के मत के ठीक विपरीत मैक्स वेवर के अनुसार औद्योगिक व्यवस्था और पूंजीवादी प्रणाली विवकेशीलता, संचय की प्रवृत्ति, प्रतिस्पर्धा, कठिन श्रम, समय के मूल्य तथा कर्तव्य भावना पर अधारित हैं। पूंजीवादी की उपरोक्त वर्णित चेतना के मूल में प्रोटेस्टैण्ट धर्म के आचारशास्त्र का हाथ है। प्रोटेस्टैण्ट धर्म अपने अनुयायियों को कर्तव्य बोध, समय के मूल्य तथा बचत के नैतिक पक्ष की सीख देता हैं अपने तर्क की पुष्टि में मैक्स वेवर का कहना है कि आरंभिक उद्योगीकरण और पुजीवाद का विकास प्रोटेस्टैण्ट धर्म के मानने वाले देशों इग्लैण्ड और अमेरिका में हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के बाद प्रौद्योगिकी, ऊर्जा तथा उत्पादन पद्धति में हुए व्यापक परिवर्तन ने आधुनिक आर्थिक व्यवस्था को जन्म दिया है।

4.6 औद्योगिक अर्थ व्यवस्था

उन्नीसवीं सदी के मध्य के बाद में औद्योगिक क्रान्ति के बाद के उद्योगीकरण ने एक निश्चित व्यवस्था का रूप ले लिया है। प्रौद्योगिकी, उत्पादन तथा संगठन की दृष्टि से इसकी कुछ विशेषताएं हैं।

उद्योगीकरण पर आधारित अर्थव्यवस्था अत्यन्त जटिल है। इस व्यवस्था में मनुष्य पर्यावरण से नियत्रिंत और प्रभावित होने के स्थान पर पर्यावरण को यथाशक्ति

नियन्त्रित करने को चेष्टा करता है। औद्योगिक अर्थव्यवस्था, विशेषीकरण, जटिल श्रम विभाजन, बडे पैमाने पर उत्पादन तथा विशाल यंत्रों पर आधारित है। मूर का कथन है कि इस व्यवस्था में उत्पादन की इकाई के रूप में परिवार की भूमिका समाप्त हो गई है। यंत्रों का प्रभाव कारखानों तक सीमित नहीं रह गया है बल्कि इसने खेती की पद्धति को भी प्रभावित किया है। इस तरह मनुष्य अपनी भौतिक परिस्थितियों पर आश्रित होने के स्थान पर प्रौद्योगिकी द्वारा निर्मित परिस्थितियों पर अधिक निर्भर होता जा रहा है। जनजातीय और कृषक समाजों में उत्पादन की पद्धति और मात्रा वर्षा, धूप, भूमि की प्रकृति, उर्बरा शक्ति तथा मानवीय श्रम पर निर्भर करती थी। आधुनिक औद्योगिकी व्यवस्था तथा प्रौद्योगिकी ने मनुष्य और उसके पर्यावरण के संबंध को बदल दिया है। आधुनिक व्यवस्था के अंतर्गत भाप, बिजली, आणविक शक्ति तथा इनके द्वारा संचालित प्रौद्योगिकी ने तापमान तथा वर्षा पर निर्भरता को काफी हद तक कम किया है। नए उपकरणों के कारण मानवीय श्रम में बचत हुई है और थोडे समय में मनुष्य अधिक उत्पादन कर सकता है। इस तरह नए यंत्रों ने पुरानी परिस्थितिकी को न केवल बदल दिया है बल्कि नई परिस्थिति को भी जन्म दिया है जिसके अंतर्गत प्रकृति प्रदत्त पर्यावरण के स्थान पर मानवनिर्मित परिस्थितियां और पर्यावरण विकसित हुए हैं।

आधुनिक प्रौद्योगिकी और मानवनिर्मित परिस्थितियों ने उत्पादन की पद्धति और उसकी मात्रा में परिवर्तन के साथ ही उत्पादन के सम्बन्धों में परिवर्तन किया है। पुरानी सरल व्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक संगठन अत्यन्त सीमित था। परिवार ही भूमि अथवा दस्तकारी के उपकरणों का स्वामी होता था। परिवार के लोग ही अपने श्रम से उत्पादन करते थे। अपने उत्पादन के साधनों जैसे हल, बैल, करघा, भट्ठी तथा उत्पादित वस्तुओं अनाज, कपड़ा, औजार आदि का प्रबंध परिवार करता था। उद्योगों के कारण यह अब नए रूप, नई विशेषताओं के साथ हमारे सामने उपस्थित हुआ है। औद्योगिक आर्थिक व्यवस्था की निम्नांकित विशेषतांए हैं :-

1. श्रम के स्थान पर पूंजी का महत्व

2. उत्पादन की इकाई के रूप में परिवार
3. मानवीय और पशुओं के श्रम के स्थान पर विशाल यंत्रों का उपयोग
4. मानवीय तथा पशुश्रम पर आधारित ऊर्जा के स्थान पर भाप, बिजली तथा आणविक ऊर्जा का उत्पादन में उपभोग
5. जीविका के लिए किए गए उत्पादन के स्थान पर विनिमय और लाभ की भावना से किया गया उत्पादन।
6. स्थानीय हाट और बाजार के स्थान पर विश्व बाजार का उदय
7. सहयोग के स्थान पर प्रतिस्पर्धा
8. यातायात तथा संचार के समुन्नत साधन
9. वेतन पर आश्रित और पेशेवर वर्ग
10. मुद्रा पर आधारित अर्थव्यवस्था
11. विशाल कम्पनियों तथा निगमों का जन्म
12. उद्योगपतियों के स्थान पर प्रबंधकों द्वारा उद्योगों का संचालन
13. ग्रामीण समुदायों एवं कृषक व्यवस्था के स्थान पर नगरों और प्रौद्योगिकी पर आधारित अर्थव्यवस्था
14. अत्यन्त जटिल श्रम विभाजन की पद्धति

आधुनिक औद्योगिकी व्यवस्था ने कम्पनी, निगम, शेयर बाजार, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों बैंक, उद्योगपतियों तथा श्रमिकों के संघ आदि को जन्म दिया है। समाजशास्त्री इन विशाल आर्थिक समूहों को औपचारिक संगठन कहते हैं। ये आर्थिक संगठन नियम, प्रणाली, अवैयक्तिक संबंध तथा आर्थिक हित की पूर्ति की भावना पर आधारित है। इन आर्थिक संगठनों की निम्नांकित विशेषताएं हैं :-

1. इनकी सदस्यता निश्चित नियमों पर आधारित होती है। एक निश्चित अवधि के बाद इनके पदाधिकारियों का चुनाव होता है।

2. इनके सदस्यों की संख्या कभी-कभी इतनी अधिक होती है और इनका आकार इतना बड़ा होता है कि सदस्यों के बीच व्यक्तिगत और प्रत्यक्ष संपर्क का अभाव पाया जाता है।

3. ये सगंठन उत्पादन, वितरण अथवा विनिमय के निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सोच समझ कर बनाये जाते हैं।

4. इनके आकार की विशालता तथा निश्चित उद्देश्यों के कारण इनके सदस्यों के पारस्परिक संबंध भावना के स्थान पर औपचारिक और विधि सम्मत नियमों पर आधारित होते हैं।

5. इन संगठनों के सदस्यों के बीच निश्चित अवधि के बाद होने वाली बैठकों, परिपत्रों और समाचार पत्रों आदि के द्वारा संपर्क स्थापित होता है।

आधुनिक आर्थिक संगठन में सामुहिकता की भावना प्रभावित हुई सी प्रतीत होती है जहां तक वृद्धों की आर्थिक निर्भरता का प्रश्न है तो इनकी स्थिति का विश्लेषण सारणी के अवलोकन से स्पष्ट हो जाता है।

तालिका संख्या 4.6

आयु समूहवार युवा उत्तरदाताओं का विवरण

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	युवा उत्तरदाताओं का विवरण	
		उत्तरदाताओं की संख्या	%
1	15-19	50	25.00
2	20-24	75	37.50
3	25-29	75	37.50
	Total	**200**	**100.00**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.6 में आयु समूह 15-19, 20-24, 25-29 वर्ष के समूहानुसार युवाओं को बांटा गया है। अध्ययन हेतु दैव निदर्शन पद्धति से चयनित आयु समूह 15-19 वर्ष के 50 (25.00), 20.24 वर्ष के 75 (37.50) तथा 25-29 वर्ष के 75 (37.50) युवा उत्तरदाताओं को सम्मिलित किया गया है।

आयु समूह 15-19 वर्ष के उत्तरदाताओं का प्रतिशत सबसे कम है। इस आयु समूह के अधिकांश युवा अपने माता-पिता अथवा संरक्षकों पर आश्रित होते हैं अर्थात् अपने परिवार के बड़े बुजुर्गो पर उनकी निर्भरता अधिक होती है।

तालिका संख्या 4.7

आयु समूहवार वृद्ध उत्तरदाताओं का विवरण

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	उत्तरदाताओं की संख्या	
		संख्या	%
1	30-49	45	22.50
2	50-69	97	48.50
3	70 से ऊपर	58	29.00
	योग -	**200**	**100.00**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.7 में आयु समूह 30-49, 50-69 तथा 70 वर्ष से ऊपर के अनुसार वृद्ध उत्तरदाताओं की संख्या को दर्शाया गया है। आयु समूह 50-69 वर्ष के वृद्ध उत्तरदाताओं की संख्या 97 है जो सर्वाधिक है । 70 वर्ष से ऊपर के उत्तरदाताओं की संख्या 58 है जो अध्ययन हेतु चयनित उत्तरदाताओं का 29 प्रतिशत है। 30-49 वर्ष आयु समूह के उत्तरदाताओं का प्रतिशत 22.50 (45) है।

तालिका संख्या 4.8

युवा उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति

क्र.	आयु समूह (वर्षो में)	युवा उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति							
		वैवाहिक स्थिति							
		अविवाहित		विवाहित		तलाकशुदा		विधुर/ विधवा	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	**15-19**	35	17.5	15	7.5	00	0.0	00	0.0
2	**20-24**	10	5.0	60	30.0	00	0.0	05	2.5
3	**25-29**	05	2.5	65	32.5	00	0.0	05	2.5
	योग	**50**	**25.0**	**140**	**70.0**	**00**	**0.0**	**10**	**5.0**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.8 में युवा उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति को दर्शाया गया है। आयु समूह 15-19 वर्ष के 17.5 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित हैं। यह प्रतिशत सर्वाधिक है। सबसे कम 2.5 प्रतिशत उत्तरदाता आयु समूह 25-29 वर्ष के हैं जो अविवाहित है। 20-24 वर्ष के 5.0 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित है। आयु समूह 25-29 वर्ष के 32.5 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित हैं। यह प्रतिशत सर्वाधिक है। 15-19 वर्ष आयु समूह के 7.5 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित है। विधुर उत्तरदाताओं का प्रतिशत 2.5 है। यह प्रतिशत आयु समूह 20-24 तथा 25-29 वर्ष के उत्तरदाताओं से सम्बन्धित है। चयनित युवा उत्तरदाताओं में तलाक शुदा उत्तरदाताओं की संख्या शून्य है।

आयु समूह 15-19 वर्ष के युवा उत्तरदाताओं का प्रतिशत कम होने का कारण यह है कि अब बदलती परिस्थितियों में नगरीय समाजों के साथ ही ग्रामीण समाजों में भी शीघ्र या कम आयु में विवाह करने की प्रवृत्ति में ह्रास हो रहा है। 25-29 वर्ष आयु समूह के विवाहित युवाओं की संख्या चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 65 (32.5) है। क्योंकि इस आयु समूह तक आते-आते युवाओं की भविष्य की अपनी दिशा निश्चित हो

जाती है। इस आयु समूह से अधिक उम्र में विवाह करना बुन्देलखण्ड के जनमानस में उचित नहीं माना जाता है।

विधुर युवाओं का जो प्रतिशत आयु समूह 20-24 और 25-29 वर्ष का पाया गया उसमें अधिकांश की पत्नियां या तो किसी बीमारी के कारण मृत्यु का शिकार हो गयी या फिर कुण्ठावश आत्महत्या कर ली। साक्षात्कार के दौरान शोधार्थिनी ने पाया कि एक युवा की पत्नी ने सिर्फ इस कारण से आत्महत्या कर ली क्योंकि उसका पति अपने माता-पिता से अलग होकर एकाकी परिवार नहीं बसाना चाहता था। जबकि अध्ययन क्षेत्र के तीन युवाओं की पत्नियों की मृत्यु प्रथम प्रसव के दौरान हुई क्योंकि उन्हें समायानुसार चिकित्सीय सुविधाएं प्राप्त नहीं हो सकी। एक युवा की पत्नी ने केवल इस कारण अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली क्योंकि उसे अपनी ससुराल की महिलाओं द्वारा समय-समय पर दहेज न लाने के लिए प्रताडित किया जाता था। शोधार्थिनी ने उक्त तथ्यों की पुष्टि अध्ययन पद्धति की उपलब्ध समुचित प्रविधियों द्वारा अध्ययन के दौरान की ।

तालिका संख्या 4.9

वृद्ध उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति

क्र.	आयु समूह (वर्षों में)	वृद्ध उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति							
		वैवाहिक स्थिति							
		अविवाहित		विवाहित		तलाकशुदा		विधुर/ विधवा	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	30-49	12	6.0	20	10.0	03	1.5	10	5.0
2	50-69	09	4.5	70	35.0	08	4.0	10	5.0
3	70 से ऊपर	02	1.0	38	19.0	03	1.5	15	7.5
	योग -	**23**	**11.5**	**128**	**64.0**	**14**	**7.0**	**35**	**17.5**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.9 में वृद्ध उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति को दर्शाया गया है। आयु समूह 30-49 वर्ष के अविवाहितों का प्रतिशंताक 6.0 है जबकि आयु समूह

50-69 वर्ष के उत्तरदाताओं के विवाहित होने की संख्या 70 (35.0) है जो सर्वाधिक है। आयु समूह 70 वर्ष के ऊपर के उत्तरदाताओं के विधुर होने की प्रतिशतांक 7.5 है। चयनित उत्तरदाताओं को 64.0 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित हैं तथा विधुर उत्तरदाताओं का प्रतिशत 17.5 है जबकि अविवाहित वृद्ध उत्तरदाताओं का प्रतिशत 11.5 है। उत्तदाताओं में 7.0 प्रतिशत उत्तरदाता तलाकशुदा है। इस श्रेणी के उत्तरदाताओं में 6.0 प्रतिशत उत्तरदाताओं के अविवाहित होने के कारणों में शोधार्थिनी ने पाया कि जो लोग एक निश्चित आयु समूह में विवाह संस्था का पालन नहीं कर सके उन्होने बाद में विवाह नहीं किया और अविवाहित जीवन जीने लगे।

तालिका संख्या 4.10

वृद्ध व्यक्तियों की पारिवारिक संरचना का स्वरूप

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	पारिवारिक संरचना का स्वरूप			
		संयुक्त		एकाकी	
		संख्या	%	संख्या	%
1	30-49	36	18.0	09	4.5
2	50-69	43	21.5	54	27.0
3	70 से ऊपर	22	11.0	36	18.0
	योग -	**101**	**50.5**	**99**	**49.5**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

वृद्ध व्यक्तियों की पारिवारिक संरचना के स्वरूप की स्थिति को तालिका संख्या 4.10 में दर्शाया गया है। अध्ययन क्षेत्रों के चयनित वृद्ध उत्तरदाताओं में से 50.5 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त परिवार में निवास करते हैं जबकि 49.5 प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी परिवार में निवास करते हैं। आयु समूह 50-69 वर्ष के 21.5 प्रतिशत वृद्ध संयुक्त परिवारों में निवास करते हैं। यह प्रतिशत सर्वाधिक है। संयुक्त परिवार में निवास करने वाले वृद्धों के समूह का यह प्रतिशत सर्वाधिक है जबकि इसी आयु समूह के 27.0 प्रतिशत वृद्ध

एकाकारी परिवार में निवास करते हैं। आयु समूह 30-49 वर्ष के लोग जो संयुक्त परिवारों में निवास करते हैं उनका प्रतिशत 18.0 है । आयु समूह 30-49 वर्ष के 4.5 प्रतिशत वृद्ध एकाकी परिवारों में निवास करते हैं।

तालिका संख्या 4.11

युवा उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचना का स्वरूप

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	युवाओं पारिवारिक संरचना का स्वरूप			
		संयुक्त		एकाकी	
		संख्या	%	संख्या	%
1	15-19	46	23.0	04	2.0
2	20-24	49	24.5	26	13.0
3	25-29	41	20.5	34	17.0
	योग -	**136**	**68.0**	**64**	**32.0**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.11 में युवा उत्तरदाताओं की पारिवारिक संरचना के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है। अध्ययन क्षेत्र चयनित युवाओं में आयु समूह 15-19 वर्ष के 23.0 प्रतिशत युवा संयुक्त परिवारों में निवास करते हैं, मात्र 2.0 युवा जो इसी आयु समूह के हैं एकाकी परिवारों के अंग हैं सम्पूर्ण अध्ययन क्षेत्र के 68.0 प्रतिशत युवा संयुक्त परिवारों में निवास करते हैं तथा 32.0 प्रतिशत युवा एकाकी परिवारों में निवास करते हैं। 25-29 वर्ष के आयु समूह के 17.0 प्रतिशत युवा एकाकी परिवारों में निवास करते हैं। 20-24 वर्ष आयु समूह के 24.5 प्रतिशत युवा संयुक्त परिवारों में निवास करते हैं जबकि इसी आयु समूह के 13.0 प्रतिशत युवा एकाकी पारिवारिक संरचना के अंग हैं। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि युवा वर्ग की उम्र में जैसे-जैसे वृद्धि होती जाती है उनमें संयुक्त परिवार के स्थान पर एकाकी परिवार में जीवन यापन की वृद्धि होती जाती है।

तालिका संख्या 4.12

वृद्ध उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	वृद्ध उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति											
		अशिक्षित		प्राथ/ जू0		हाईस्कूल		इण्टर		स्नातक		परामस्नातक	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	30-49	22	11.0	15	7.5	06	3.0	02	1.0	00	0.00	00	0.0
2	50-69	52	26.0	29	14.5	14	7.0	02	1.0	00	0.00	00	0.0
3	70 से ऊपर	42	2.10	16	8.0	00	0.0	00	0.0	00	0.00	00	0.0
	योग -	**116**	**58.00**	**60**	**30.0**	**20**	**10.0**	**04**	**2.0**	**00**	**0.0**	**00**	**0.0**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

वृद्ध उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति को तालिका संख्या 4.12 में स्पष्ट किया गया है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के 58.0 प्रतिशत वृद्ध अशिक्षा के शिकार हैं। मात्र 42.0 प्रतिशत वृद्ध शिक्षित हैं । प्राथमिक/ जूनियर तक शिक्षा ग्रहण करने वाले वृद्धों का प्रतिशत 30.0 है तथा इण्टर तक की शिक्षा पाए वृद्धों का प्रतिशत मात्र 2.0 है। स्नातक तथा परास्नातक की उपाधि धारण करने वाला कोई वृद्ध नहीं है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में शिक्षा का प्रतिशत अन्य भू-भाग से कम है जिसका प्रभाव वृद्धों की शैक्षणिक स्थिति में देखा जा सकता है। आयु समूह 50-69 वर्ष के वृद्धों में शैक्षणिक स्थिति के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 26.0 प्रतिशत वृद्ध अशिक्षित हैं।

तालिका संख्या 4.13

युवा उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	युवा उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति											
		अशिक्षित		प्राथ/ जू0		हाईस्कूल		इण्टर		स्नातक		परामस्नातक	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	15-19	11	5.5	16	8.0	14	7.0	09	4.5	00	00	00	00
2	20-24	12	6.0	26	13.0	21	10.5	11	5.5	05	2.5	00	00
3	25-29	17	8.5	27	13.5	18	9.0	10	5.0	03	1.5	00	00
	योग -	40	20.6	69	34.5	53	26.5	30	15.0	08	4.0	00	00

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.13 में युवा उत्तरदाताओं की शैक्षणिक स्थिति को दर्शाया गया है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के चयनित उत्तरदाताओं में 20.0 प्रतिशत उत्तरदाता अशिक्षित है। 34.5 प्रतिशत उत्तरदाता प्राथमिक/ जूनियर स्तर तक की शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं। 26.5 प्रतिशत उत्तरदाता हाईस्कूल तथा 15.0 प्रतिशत उत्तरदाता इण्टर एवं मात्र 4.0 प्रतिशत उत्तरदाता स्नातक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं। परास्नातक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त युवा नहीं है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे अध्ययन स्तर में वृद्धि होती है जाती है। युवाओं का प्रतिशत में ह्रास होता जाता है।

तालिका संख्या 4.14

वृद्ध उत्तरदाताओं के व्यवसाय की स्थिति

क्र.	आयु समूह (वर्षो में)	वृद्ध उत्तरदाताओं के व्यवसाय की स्थिति									
		बेरोजगार		व्यापार		नौकरी		कृषि		पेंशन	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	30-49	04	2.00	22	11.0	09	4.5	10	5.0	00	0.0
2	50-69	12	6.0	15	7.5	20	10.0	20	10.0	30	15.0
3	70 से ऊपर	13	6.5	01	0.5	00	0.0	02	1.0	42	21.00
	योग -	**29**	**14.5**	**38**	**19.0**	**29**	**14.5**	**32**	**16.0**	**72**	**36.0**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.14 में वृद्ध उत्तरदाताओं की व्यवसाय की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। आयु समूह 30-49 वर्ष के 2.0 प्रतिशत उत्तरदाता बेरोजगार है। इस आयु समूह के 0.0 प्रतिशत उत्तरदाता पेंशनधारक हैं। आयु समूह 70 वर्ष से अधिक के वृद्ध हैं जो बेरोजगार हैं। उनका प्रतिशत 6.5 है जो सर्वाधिक है। इस आयु समूह के 21.0 प्रतिशत वृद्ध पेंशन धारक हैं। तालिका से स्पष्ट होता है कि व्यापार करने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशतांक सभी आयु समूहों में 19.0 है। जबकि सर्वाधिक 36.0 प्रतिशत वृद्ध पेंशनधारक हैं। 16.0 प्रतिशत उत्तरदाता कृषि कार्यो से संलग्न हैं तथा 14.5 प्रतिशत उत्तरदाता नौकरी करते हैं।

जो उत्तरदाता बेरोजगार हैं उनमें अधिकांश शारीरिक रूप से कमजोर हो चुके हैं या फिर किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त हैं जो वृद्ध व्यापार या कृषि कार्यो में संलग्न हैं उनमें उनके परिवार के सदस्यों की भी सहभागिता रहती है। जैसे-जैसे उम्र में वृद्धि होती जाती है कार्य करने की क्षमता में ह्रास होता जाता है फिर भी वृद्ध में कार्य के प्रति रूचि दिखाई देती है किन्तु वे अपने परम्परागत रूप में ही कार्य करने में रूचि रखते हैं। नवीनता को स्वीकार करने में उनकी अरूचि दिखाई देती है।

तालिका संख्या 4.15

युवा उत्तरदाताओं के व्यवसाय की स्थिति

क्र.	आयु समूह (वर्षों में)	युवा उत्तरदाताओं के व्यवसाय की स्थिति							
		बेरोजगार		व्यापार		नौकरी		कृषि	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	15-19	46	23.0	01	0.5	02	1.0	01	0.5
2	20-24	38	19.0	18	9.0	15	7.5	04	2.0
3	25-29	34	17.0	22	11.0	13	6.5	06	3.0
	योग -	**118**	**59.0**	**41**	**20.5**	**30**	**15.0**	**11**	**5.5**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका 4.15 में युवा उत्तरदाताओं के व्यवसाय की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 59.0 प्रतिशत युवा बेरोजगारी के शिकार हैं। 20.5 प्रतिशत उत्तरदाता नौकरी करते हैं, 15.0 प्रतिशत युवा व्यापार तथा 5.5 प्रतिशत युवा कृषि कार्यो से संलग्न हैं। आयु समूह 20-24 वर्ष के 19.0 प्रतिशत युवा बेरोजगार हैं जबकि 25-29 वर्ष आयु समूह के 9.0 प्रतिशत युवा नौकरी 7.5 प्रतिशत व्यापार तथा 2.0 प्रतिशत युवा कृषि कार्यो में संलिप्त हैं। आयु समूह 25-29 वर्ष के 11.0 प्रतिशत युवा नौकरी करते हैं । यह प्रतिशत व्यवसायों में संलिप्त युवाओं में सर्वाधिक है। अध्ययन क्षेत्र के जो उत्तरदाता नौकरी करते हैं वे शासकीय अथवा अशासकीय या अर्द्धशासकीय हैं। आयु समूह 15-19 वर्ष के युवाओं में बेरोजगारी का प्रतिशतांक सर्वाधिक होने का कारण यह है कि इस उम्र तक युवा या तो अध्ययनरत रहते हैं या फिर अपने कैरियर को बनाने के लिए संघर्ष कर रहे होते हैं। जो युवा व्यापार अथवा कृषि जैसे कार्यो से संलग्न हैं उनमें अधिकांश के साथ उनके परिवार के अधिक उम्र के लोगों की भी सहभागिता रहती है।

युवा और वृद्धों में चाहे कृषि कार्य हो या व्यापार या फिर नौकरी में दोनों वर्गो के कार्य प्राथमिकता कार्य संस्कृति तथा सिद्धान्तों में तालमेल नहीं रहता । युवा वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार अपनी व्यवसायिक गतिशीलता को कायम करना चाहता है जबकि

वृद्ध लोग अपनी परम्परागत व्यावसायिक शैली को छोडना नहीं चाहते और उसकी के अनुसार कार्य करना चाहते हैं । ऐसी स्थिति में दोनों के मध्य पीढ़ियों की दृष्टि में अन्तर परिलक्षित होता है जो संघर्ष के रूप में स्पष्ट होता है।

तालिका संख्या 4.16

वृद्ध उत्तरदाताओं की प्रतिमाह आय की स्थिति

क्र.	आयु समूह (वर्षो में)	वृद्ध उत्तरदाताओं की प्रतिमाह आय की स्थिति							
		500-1000		1000-5000		5000-10000		10000 से ऊपर	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	30-49	10	5.5	24	13.2	12	6.6	05	2.7
2	50-69	15	8.2	43	23.7	24	13.2	03	1.6
3	70 से ऊपर	30	16.5	10	5.5	05	2.7	00	0.00
	योग -	**55**	**30.3**	**77**	**42.5**	**41**	**22.6**	**08**	**4.4**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

वृद्ध उत्तरदाताओं की प्रतिमाह आय की स्थिति को तालिका संख्या 4.16 में दर्शाया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 200 में से 181 उत्तरदाता किसी न किसी आय के स्रोत से सम्बद्ध हैं, 1000-5000 प्रतिमाह आय अर्जित करने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशंताक 42.5 है जबकि 10,000 रूपये प्रतिमाह से अधिक आय अर्जित करने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशत 4.4 है जो सबसे कम है। 70 वर्ष से अधिक आय अर्जित करने वाले वृद्ध उत्तरदाताओं की आय में कमी होती जाती है। विशेष कर जो वृद्ध व्यापार या कृषि कार्य से जुड़े होते हैं। उनकी आय में ह्रास होता जाता है क्योंकि शारीरिक क्षमता कम होने तथा कार्य संस्कृति के बदलते परिवेश में समायोजन न हो पाने के कारण उनकी प्रतिमाह आय में गिरावट हो जाती है। तुलनात्मक रूप में प्रतिमाह आय अर्जित करेन वृद्धों की संख्या युवाओं से अधिक है किन्तु प्रतिमाह अर्जित की जाने वाली धनराशि के अनुसार युवाओं का प्रतिशतांक अधिक है।

आज का युवा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करने में लगा हुआ है। इसके लिए चाहे वह अपने संरक्षकों पर ही क्यों न निर्भर हो।

तालिका संख्या 4.17

युवा उत्तरदाताओं की प्रतिमाह आय की स्थिति

क्र.	आयु समूह (वर्षो में)	वृद्ध उत्तरदाताओं की प्रतिमाह आय की स्थिति							
		500-1000		1000-5000		5000-10000		10000 से ऊपर	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	15-19	01	1.2	03	3.6	00	0.0	00	0.0
2	20-24	05	6.09	10	12.19	22	26.8	00	0.0
3	25-29	04	4.8	10	12.19	17	20.7	10	12.19
	योग -	**10**	**12.19**	**23**	**28.0**	**39**	**47.5**	**10**	**12.19**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.17 में युवा उत्तरदाताओं की प्रतिमाह आय की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 500-1000 रूपये प्रतिमाह आय अर्जित करने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशंताक 12.19 है। 5000-10,000 तक प्रतिमाह आय अर्जित करने वाले युवाओं का प्रतिशतांक 47.5 है जबकि 10,000 से ऊपर आय अर्जित करने वाले युवाओं का प्रतिशत 12.19 है। जिन युवाओं की प्रतिमाह आय 5000 रूपये प्रतिमाह से अधिक है वे किसी न किसी शासकीय या अर्द्धशासकीय संस्थानों में सेवारत हैं जिन युवाओं की आय प्रतिमाह कम है वे या तो अपना व्यापार करते हैं या फिर कृषि कार्यो से संलग्न है। आयु समूह 15-19 वर्ष के युवाओं में 5000 रूपये से अधिक आय अर्जित करने वाला कोई भी उत्तरदाता नहीं है।

तालिका संख्या 4.18

वृद्ध उत्तरदाताओं के आय खर्च करने की स्थिति

क्र.	आयु समूह (वर्षो में)	आय खर्च करने की स्थिति							
		स्वयं पर		परिवार के सदस्यों पर		पत्नी पर		समाज कल्याण में	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	30-49	13	7.18	21	11.6	15	8.2	02	1.1
2	50-69	18	9.9	40	22.0	21	11.6	06	3.3
3	70 से ऊपर	08	4.4	34	18.7	02	1.1	01	0.5
	योग -	**39**	**21.5**	**95**	**52.4**	**38**	**20.9**	**09**	**4.9**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.18 में वृद्ध उत्तरदाताओं के आय खर्च करने की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। वृद्ध जो आय अर्जित करते हैं उनमें 52.4 प्रतिशत वृद्ध अपने परिवार के सदस्यों पर खर्च करते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। 21.5 प्रतिशत वृद्ध स्वयं पर अपनी आय खर्च करते हैं जबकि 20.9 प्रतिशत वृद्ध अपनी पत्नी पर अपनी आय का अधिकांश भाग खर्च करते हैं। 4.9 प्रतिशत वृद्ध समाज कल्याण के कार्यो में अपनी आय खर्च करते हैं। 50-69 आयु समूह के 22.0 प्रतिशत वृद्ध अपनी आय को परिवार के सदस्यों की सुख सुविधाओं में खर्च करते हैं । यह प्रतिशत सर्वाधिक है। इसी आयु समूह के 9.9 प्रतिशत वृद्ध अपने स्वयं पर अपनी आय खर्च करते हैं। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वृद्ध अपनी आय का अधिकांश भाग परिवार के सदस्यों पर खर्च करते हैं। जब तक वे अपनी आय को परिवार के सदस्यों पर खर्च करते हैं तभी तक परिवार में उनका सम्मान होता है तथा उनका ध्यान रखा जाता है यदि कोई व्यक्ति अपनी आय को परिवार के सदस्यों पर खर्च नहीं करता तो परिवार के युवा सदस्यों की दृष्टि में अच्छे नहीं होते हैं।

तालिका संख्या 4.19

युवा उत्तरदाताओं के आय खर्च करने की स्थिति

क्र.	आयु समूह (वर्षो में)	आय खर्च करने की स्थिति							
		स्वयं पर		बच्चों पर		बुजुर्गो पर		समाज कल्याण में	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	15-19	04	4.8	00	0.0	00	0.0	00	0.0
2	20-24	08	9.7	21	25.6	08	9.7	00	0.0
3	25-29	03	3.6	32	39.0	05	6.09	01	1.2
	योग -	**15**	**18.3**	**53**	**64.6**	**13**	**15.8**	**01**	**1.3**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.19 में युवा उत्तरदाताओं की अर्जित की जाने वाली आयु को खर्च करने की स्थिति को स्पष्ट किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के आय अर्जित करने वाले 82 युवा उत्तरदाताओं में से 18.3 प्रतिशत युवा स्वयं पर 64.6 प्रतिशत युवा बच्चों पर तथा 15.8 प्रतिशत युवा अपने बुजुर्गो पर अपनी होने वाली आय का अधिकांश भाग खर्च करते हैं। 1.3 प्रतिशत युवा सामाजिक कार्यो में अपनी आय खर्च करते हैं। आयु समूह 20-24 वर्ष के 9.7 प्रतिशत युवा अपने बुजुर्गो पर अपनी आय का अधिकांश भाग खर्च करते हैं यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। आयु समूह 25-29 वर्ष के 39.0 प्रतिशत युवा अपने बच्चों पर अपनी आय खर्च करते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे आयु में वृद्धि होती जाती है। बुजुर्गो पर धन खर्च करने की स्थिति में ह्रास होता जाता है और वे अपने बच्चों पर ही सारा ध्यान केन्द्रित कर देते हैं। आयु समूह 15-19 वर्ष के युवाओं में बुजुर्गो पर धन खर्च करने का प्रतिशत कम होता है क्योंकि इस आयु समूह में उनकी आयु कम होती है और जो भी आय होती है उसे वे स्वयं की शान-शौकत में खर्च करते हैं।

तालिका संख्या 4.20

वृद्ध व्यक्तियों द्वारा युवाओं को सलाह देने की स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षों में)	सलाह देने की स्थिति					
		हाँ		नहीं		कभी-कभी	
		सं.	%	सं.	%	सं.	%
1	30-49	25	12.5	05	2.5	15	7.5
2	50-69	55	27.5	12	6.0	30	15.0
3	70 से ऊपर	30	15.0	20	10.0	08	4.0
	योग -	**110**	**55.0**	**37**	**18.5**	**53**	**26.5**

स्रोत : सर्वेक्षण के आधार पर

वृद्ध व्यक्तियों द्वारा युवाओं को उनके विभिन्न कार्यो में सलाह देने की स्थिति का उल्लेख तालिका संख्या 4.20 में किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 55.0 प्रतिशत वृद्ध युवाओं को उनके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले विभिन्न कार्यो के लिए यथोचित सलाह देते हैं। 18.5 प्रतिशत वृद्ध ऐसे हैं जो अपने पारिवारिक युवाओं को किसी प्रकार की सलाह नहीं देते हैं। 26.5 प्रतिशत वृद्ध अपने परिवार के युवाओं को कभी-कभी सलाह देते हैं। आयु समूह 50-69 वर्ष के 27.5 प्रतिशत वृद्ध युवाओं को सलाह देते हैं । इसी आयु समूह के 15.0 प्रतिशत वृद्ध कभी-कभी सलाह देते हैं। तालिका से स्पष्ट होता है 70 वर्ष से अधिक उम्र के वृद्ध ऐसे हैं जो युवाओं को कभी-कभी सलाह देते हैं ऐसे वृद्धों का प्रतिशत 4.0 है।

तालिका संख्या 4.21

युवाओं द्वारा सलाह मानने की स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	युवाओं द्वारा सलाह मानने की स्थिति					
		हाँ		नहीं		कभी-कभी	
		सं.	%	सं.	%	सं.	%
1	15-19	05	2.5	35	17.5	10	5.0
2	20-24	11	5.5	34	17.0	30	15.0
3	25-29	12	6.0	36	18.0	27	13.5
	योग -	**28**	**14.0**	**105**	**52.5**	**67**	**33.5**

स्रोत : सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.21 में युवाओं द्वारा अपने बुजुर्गो को दी गयी सलाह को मानने या न मानने की स्थिति को दर्शाया गया है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 52.5 प्रतिशत युवा अपने बुजुर्गो द्वारा दी गयी सलाह को बिल्कुल ही नहीं मानते है। 33.5 प्रतिशत युवा ऐसे हैं जो बुजुर्गो की सलाह को कभी-कभी मानते हैं और उसके अनुसार कार्यो का सम्पादन करते हैं। 14.0 प्रतिशत युवा ऐसे हैं जो अपने बुजुर्गो की दी गयी सलाह पर अमल करते हैं। तालिका से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे युवाओं की उम्र आगे बढ़ती है वे अपने बुजुर्गो की सलाह मानने लगते हैं।

शोधार्थिनी ने अध्ययन के दौरान पाया कि युवाओं को अपने बुजुर्गो द्वारा दी गयी सलाह ठीक नहीं लगती है और वे उसके अनुसार कार्य करने में किसी प्रकार की रूचि नहीं होती वे अपने बुजुर्गो द्वारा दी गयी सलाह को 'दकियानूसी' विचार कहकर उपहास उड़ाते हैं तथा उन्हें परम्परावादी कहकर उपेक्षा कर देते हैं।

तालिका संख्या 4.22

युवाओं का वृद्ध व्यक्तियों के प्रति व्यवहार

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	वृद्ध व्यक्तियों के प्रति व्यवहार					
		बुरा		अच्छा		बहुत अच्छा	
		सं.	%	सं.	%	सं.	%
1	30-49	11	5.5	20	10.0	14	7.0
2	50-69	40	20.0	45	22.5	12	6.0
3	70 से ऊपर	35	17.5	18	9.0	05	2.5
	योग -	**86**	**43.0**	**83**	**41.5**	**31**	**15.5**

स्रोत : क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

युवा वर्ग का व्यवहार वृद्ध व्यक्तियों के प्रति भौतिक वादी सोच के साथ बदलता जा रहा है। युवाओं को वृद्ध व्यक्तियों के प्रति व्यवहार को तालिका संख्या 4.22 में दर्शाया गया है।

शोधार्थिनी द्वारा वृद्ध उत्तरदाताओं से उनके परिवार के युवाओं का उनके प्रति व्यवहार के सम्बन्ध में जानकारी ली गयी। अध्ययन से स्पष्ट हुआ कि क्षेत्र के 43.0 प्रतिशत वृद्ध अपने-अपने युवाओं के व्यवहार से दुखी हैं उनका मानना कि युवाओं का व्यवहार उनके प्रति ठीक नहीं है। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। 41.5 प्रतिशत वृद्धों का मानना है कि युवाओं का उनके प्रति व्यवहार अच्छा है। 15.5 प्रतिशत वृद्धों ने स्वीकार किया कि उनके परिवार के युवा उनके प्रति बहुत अच्छा व्यवहार करते हैं। आयु समूह 50-69 वर्ष के वृद्ध मानते हैं कि उनके प्रति युवाओं का व्यवहार बुरा है इसी आयु समूह के 22.5 प्रतिशत ने माना कि युवा उनके साथ अच्छा व्यवहार करते हैं। यह प्रतिशत अपने समूह में सर्वाधिक है।

तालिका संख्या 4.23

युवाओं द्वारा वृद्ध व्यक्तियों को ध्यान रखने की स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	ध्यान रखने की स्थिति					
		हॉं		नहीं		कभी-कभी	
		सं.	%	सं.	%	सं.	%
1	**15-19**	15	7.5	16	8.0	19	9.5
2	**20-24**	20	10.0	45	22.5	10	5.0
3	**25-29**	18	9.0	52	26.0	05	2.5
	योग -	**53**	**26.5**	**113**	**56.5**	**34**	**17.0**

स्रोत : क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.23 में युवाओं द्वारा वृद्ध व्यक्तियों के ध्यान रखने की स्थिति का विश्लेषण किया गया है। तालिका से स्पष्ट होता है कि क्षेत्र के 56.5 प्रतिशत युवा अपने बुजुर्गो का ध्यान बिल्कुल ही नहीं रखते हैं। 17.0 प्रतिशत युवा कभी-कभी बुजुर्गो की समस्याओं को हल करने में अपना सहयोग देते हैं। 26.5 प्रतिशत युवाओं ने माना कि वे अपने परिवार के बुजुर्गो का ध्यान रखते हैं। आयु समूह 20-24 वर्ष के 10.0 प्रतिशत युवा अपने बुजुर्गो का ध्यान रखते हैं । इसी समूह के 22.5 प्रतिशत युवा अपने बुजुर्गो का ध्यान नहीं रखते हैं। 5.0 प्रतिशत युवा कभी-कभी अपने बुजुर्गो का ध्यान रखते हैं।

तालिका संख्या 4.24

वृद्धों के परिवार में कलह की स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	कलह की स्थिति					
		हॉं		नहीं		कभी-कभी	
		सं.	%	सं.	%	सं.	%
1	30-49	21	10.5	05	2.5	19	9.5
2	50-69	44	22.0	13	6.5	40	20.0
3	70 से ऊपर	32	16.0	03	1.5	23	11.5
	योग -	97	**48.5**	**21**	**10.5**	**82**	**40.0**

स्रोत : क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 4.24 में वृद्ध उत्तरदाताओं के परिवार में कलह की स्थिति का उल्लेख किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 48.5 प्रतिशत वृद्धों ने स्वीकार किया कि उनके परिवार में कलह की स्थिति बनी रहती है। जबकि 40.0 प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि उनके परिवार में कभी-कभी कलह होती है। 10.5 प्रतिशत वृद्धों के परिवारों में कलह नहीं होती है। आयु समूह 50-69 वर्ष के 22.0 प्रतिशत वृद्धों के परिवारों में कलह बनी रहती है। जबकि 20.0 प्रतिशत वृद्धों के परिवारों में कभी-कभी कलह होती है। 6.5 प्रतिशत वृद्धों ने माना कि उनके परिवार में कभी भी कलह नहीं होती।

शोधार्थिनी ने अध्ययन के दौरान पाया कि परिवार में कलह का कारण कमोवेश युवा और बुजुर्गो के मध्य वैचारिक मत भिन्नता के कारण होती है और उसके केन्द्र बिन्दु में कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में बुजुर्ग होते हैं। ऐसे बुजुर्गो की संख्या अधिक होती है जो किसी प्रकार से आर्थिक रूप से सक्षम नहीं होते हैं।

*****

अध्याय–5

अन्तर-पीढ़ी संघर्ष: धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में

- धर्म से आशय
- धर्म के विविध स्वरूप
- हिन्दू सामाजिक जीवन में धर्म का महत्व
- हिन्दू धर्म में दोष
- हिन्दू धर्म एवं परिवर्तन
- संस्कृति
- संस्कृति से आशय
- संस्कृति की विशेषताएं

- अन्तर पीढ़ी संघर्ष : सारणीयन एवं विश्लेषण

5. अन्तर-पीढ़ी संघर्ष : धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में

पूर्व अध्याय में अन्तर पीढ़ी संघर्ष के पारिवारिक सामाजिक एवं आर्थिक संरचना के विभिन्न आयामों की विवेचना की गयी है। प्रस्तुत अध्याय में अन्तर पीढ़ी संघर्ष के धार्मिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था के आयामों की विवेचना की गयी है।

भारतीय समाज धर्म-प्रधान समाज कहलाता रहा है और यहां धर्म को प्रत्येक क्षेत्र में महत्ता प्राप्त रही है। धर्म व्यक्ति, परिवार, समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र के जीवन को अगणित रूपों में प्रभावित करता रहा है। यहां भौतिक सुख प्राप्ति को जीवन का परम लक्ष्य नहीं मानकर धर्म संचय को प्रधानता दी गयी है। डॉ0 राधाकृष्णन ने लिखा है, ''धर्म की धारणा के अन्तर्गत हिन्दू उन सब अनुष्ठानों और गतिविधियों को करता है, जो मानवीय जीवन को गढ़ती और बनाये रखती हैं।'' धर्म हिन्दुओं के जीवन को जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक रूपों में प्रभावित करता रहा है। परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था धर्म पर आधारित है।

5.1 धर्म से आशय

धर्म के अर्थ को 'रिलीजन' शब्द के अनुवाद के रूप में नहीं समझा जा सकता। धर्म एक अत्यन्त व्यापक प्रत्यय है। धर्म उस मौलिक शक्ति के रूप में जाना जा सकता है जो भौतिक और अभौतिक व्यवस्था का आधार रूप है और जो उस व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आवश्यक है। गिलिन और गिलिन ने लिखा है ''एक सामाजिक समूह में व्याप्त उन संवेगात्मक विश्वासों को जो किसी अलौकिक शक्ति से सम्बन्धित है और साथ

ही ऐसे विश्वासों से सम्बन्धित प्रकट व्यवहारों, भौतिक वस्तुओं एवं प्रतीकों को धर्म के समाजशास्त्रीय क्षेत्र में सम्मिलित माना जा सकता है।"[1]

सामान्यतः धर्म का अर्थ अदृश्य, अलौकिक एंव अतिमानवीय शक्तियों पर विश्वास से लिया जाता है। कई समाज-वैज्ञानिकों ने धर्म को इसी रूप में परिभाषित किया है। टायलर के अनुसार, "धर्म अध्यात्मिक-शक्तियों पर विश्वास है।"[2] सर जेम्स फ्रेजर के अनुसार, "धर्म को मैं मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की सन्तुष्टि या आराधना समझता हूँ जिनके सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव को मार्ग दिखाती और नियन्त्रित करती हैं।"[3]

किन्तु हिन्दुओं में 'धर्म' शब्द का प्रयोग उपर्युक्त अर्थो से भिन्न अर्थ में किया गया है। भारतीय धर्म-ग्रन्थों में धर्म का अर्थ कर्तव्य, स्वभाव, करने योग्य कार्य, वस्तुओं के आन्तरिक पवित्रता, आदि से लिया गया है। शाब्दिक दृष्टि से 'धर्म' शब्द 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है - धारण करना, बनाये रखना अथवा पुष्ट करना। धर्म का अर्थ सभी जीवों के प्रति दया धारण करने से है। धर्म सभी प्राणियों की रक्षा करता है।

हिन्दू धर्म एक ज्ञान है जो अलग-अलग परिस्थितियों में व्यक्तियों के विभिन्न कर्तव्यों को बतलाता है, उन्हें कर्तव्य-पथ पर बढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान करता है, मानवोचित गुणों को उनमें विकसित करता है। वेद, उननिषद् गीता, स्मृतियां, पुराण तथा मनुष्य का अन्तःकरण हिन्दू धर्म के मूल स्रोत हैं। ये ग्रन्थ ऋषियों के अनुभूत प्रयोगों के परिणाम हैं, उनके चिन्तन, मनन के उज्जवल उदाहरण हैं। इन धर्म-ग्रन्थों के माध्यम से भारतीय सामाजिक व्यवस्था का स्वरूप निर्धारित करने का प्रयास किया गया है। इन ग्रन्थों में धर्म की विस्तृत व्याख्या की गयी है, अनेक अर्थो में धर्म का प्रयोग किया गया है। डॉ0 इन्द्रदेव ने श्री मीज को उद्धृत करते हुए लिखा है, "धर्म के अन्तर्गत नैतिक नियम, कानून, रीति-रिवाज, वैज्ञानिक नियम, इत्यादि बहुत सी धारणाएं आ जाती हैं। मीज ने अपनी पुस्तक

---

[1] J.B. Gillin and J.P.Gillin, Cultural Socioloty, p. 459
[2] " Religion is the belief in spiritual beings" – E.B. Tylor, Primitive Culture, p. 224
[3] Sir James Fraizer, Gloden Bough, p. 549

'धर्म एण्ड सोसाइटी' में प्राचीन साहित्य में व्यक्त धर्म शब्द के अनेक अर्थो का विवेचन किया है। उन्होने बतलयाया है कि धर्म शब्द का प्रयोग मूर्त तथा अमूर्त दोनों रूपों में हुआ है। युधिष्ठिर का कुत्ता भी धर्म का अवतार बताया गया है। भागवत् में धर्म का वर्णन वृष (बैल) के रूप में मिलता है और पृथ्वी को गाय माना गया है। धर्म के चार पैर - सत्य, दया, तप और दान हैं । सतयुग में धर्म इन चारों पर खड़ा रहा । इसका एक पैर कम होता गया। त्रेता में धर्म तीन पैरों पर, द्वापर में दो पैरों पर और कलयुग में केवल एक पैर (दान) पर खड़ा रह गया। धर्म की यह कल्पना एक रूपक प्रतीत होती है।''[4]

धर्म का प्रयोग नैतिक कर्तव्यों के रूप में भी किया गया है। मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों की विवेचना की गयी है। ये लक्षण अग्रलिखित हैं : धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), पवित्रता, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य, क्रोध पर नियन्त्रण।[5] पुण्य और नैतिक व्यवस्था के रूप में भी धर्म का प्रयोग किया गया है। व्यक्ति के पुण्य-कर्म ही मृत्यु के पश्चात उसका साथ देते हैं। धर्म ही व्यक्ति में अच्छे और बुरे का विवेक जाग्रत करता है, उसे बतलाता है कि अच्छे कर्मो का फल उत्तम होता है और बुरे कर्मो का फल निम्न, साथ ही व्यक्ति को अपने सभी प्रकार के कर्मो का फल भोगना पड़ता है।

धर्म का निष्काम भक्ति के रूप में भी प्रयोग किया गया है। गीता में निष्काम कर्म की ओर व्यक्ति को अग्रसर किया गया है, उसे बतलाया गया है कि बिना फल की कामना के अपना कर्म करना चाहिए, अपने कर्तव्य-पथ पर सदैव बढ़ते जाना चाहिए। परम सत्य अथवा ईश्वर के रूप में भी धर्म को माना गया है। धर्म का प्रयोग रीति-रिवाजों, परम्पराओं, सामाजिक नियमों और कानून के रूप में भी किया गया है।

श्री पी.वी.काणे ने धर्म को परिभाषित करते हुए बतलाया है, ''धर्मशास्त्र के लेखकों ने धर्म का अर्थ एक मत या विश्वास नहीं माना है, अपितु उसे जीवन के एक ऐसे तरीके या आचरण की एक ऐसी संहिता माना है जो एक व्यक्ति के समाज के सदस्य के

---

[4] डॉ. इन्द्रदेव, भारतीय समाज, पृ. 391
[5] मनुस्मृति, अध्याय-6 श्लोक 21

रूप में और एक व्यक्ति के रूप में कार्य एवं क्रियाओं को नियमित करता है और जो व्यक्ति के क्रमिक विकास की दृष्टि से किया जाता है और जो इसे मानव अस्तित्व के उद्देश्य तक पहुँचाने में सहायता करता है।"[6]

भारतीय धर्म-ग्रन्थों में धर्म का प्रयोग संकुचित अर्थो, किसी सम्प्रदाय विशेष के विचार मात्र को व्यक्त करने तथा केवल अलौकिक सत्ता के सम्बन्ध में विश्वासों को प्रकट करने के लिए नहीं हुआ है। इसका प्रयोग व्यापक अर्थो में हुआ है। धर्म मानव को कर्तव्य बतलाता है, उसे सत्य की ओर अग्रसर करता , उसके व्यवहार को दिशा देता और उचित-अनुचित का बोध कराता है, धर्म की समाजशास्त्रीय विवेचना के रूप में धर्म के अन्तर्गत उन सब कर्तव्यों को लिया जा सकता है जो व्यक्ति के जीवन को सफल बनाने की दृष्टि से आवश्यक है।

5.2 धर्म के विविध स्वरूप

हिन्दू धर्म के तीन प्रमुख स्वरूप माने गये हैं : 1. सामान्य धर्म 2. विशिष्ट धर्म और 3. आपद्धर्म। यहां हम इन तीनों पर ही विचार करेंगे।

5.1.1 सामान्य धर्म

सामान्य धर्म को मानव धर्म भी कहते हैं। इसके अन्तर्गत वे नैतिक नियम आते हैं जिनके अनुसार आचरण करना प्रत्येक व्यक्ति का परम दायित्व है। इस धर्म का लक्ष्य मानव मात्र में सद्गुणों का विकास और उसकी श्रेष्ठता को जाग्रत करना है। यह वह धर्म है जो प्रत्येक के लिए अनुसरणीय है। चाहे बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरूष, गरीब हो या अमीर, सवर्ण हो या अवर्ण, राजा हो या प्रजा, सबके लिए सामान्य धर्म का पालन करना आवश्यक कर्तव्य है। श्रीमद्भागवत् में सामान्य धर्म के ये तीस लक्षण बतलाये गये हैं

---

[6] P.V.Kane, History of Dharma Shastra.

: सत्य, दया, तपस्या, पवित्रता, कष्ट सहने की क्षमता, उचित-अनुचित का विचार, मन का संयम, इन्द्रियों का संयम, अहिंसा, ब्रहम्चर्य, त्याग, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, सभी के लिए समान दृष्टि, सेवा, उदासीनता, मौन, आत्म चिन्तन, सभी प्राणियों में अपने अराध्य को देखना और उन्हें अन्न देना, महापुरूषों का संग, ईश्वर का गुण-गान, ईश्वर-चिन्तन, ईश्वर सेवा, पूजा और यज्ञों का निर्वाह, ईश्वर के प्रति दास्य-भाव, ईश्वर वन्दना, सखा-भाव, ईश्वर को आत्म-समर्पण।[7] धर्म के ये लक्षण सामान्यतः सभी संस्कृतियों में पाये जाते हैं। ये ऐसे लक्षण हैं जो व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास में योग देते हैं जो व्यक्ति को दायित्व-निर्वाह की ओर अग्रसर करते हैं, तथा अध्यात्मिकता की ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

मनुस्मृति में धर्म के दस लक्षणों पर प्रकाश डालते हुए बतलाया गया है :

धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधी दशमं धर्मलक्षणम् ।।[8]

ये दस लक्षण हैं :

1. धृति अर्थात् अपनी जीभ या जननेन्द्रियों पर संयम रखना,
2. क्षमा अर्थात् शक्तिशाली होते हुए भी क्षमाशील होना, उदार कार्य करना, दूसरों को क्षमा कर देना,
3. काम एवं लोभ पर नियन्त्रण अर्थात् शारीरिक वासनाओं पर संयम रखना
4. अस्तेय अर्थात् सोये हुए, पागल या अविवेकी व्यक्ति से विविध तरीकों द्वारा कपट करके कोई वस्तु न लेना,
5. शुचिता अर्थात् पवित्रता अपने मन, जीवात्मा और बुद्धि को पवित्र रखना
6. इन्द्रिय-निग्रह अर्थात् इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना
7. धी का तात्पर्य बुद्धि के समुचित विकास से है, किसी वस्तु के गुण-दोष की विवेचना शक्ति से हैं ।

---

[7] श्रीमद्भागवत् , 7-11 /8/ 12
[8] मनुस्मृति, 6/ 92

8. विद्या वह हैजो व्यक्ति को काम, क्रोध, लोभ, मोह, आदि क्षुद्र वृत्तियों से मुक्त करती है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष पुरूषार्थो को समझाकर तदनुरूप आचरण योग्य बनाती है

9. सत्य ।

10. अक्रोध अर्थात् क्रोध न करना ।

सामान्य धर्म के उपर्युक्त लक्षण मानव मात्र के विकास में योग देते हैं। इन गुणों को अपने आप में विकसित करने की प्रत्येक मानव से अपेक्षा की जाती है।

5.1.2 विशिष्ट धर्म

विशिष्ट धर्म को 'स्वधर्म' भी कहा गया है। विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत वे कर्तव्य आते हैं जिनका समय, परिस्थिति और स्थान विशेष को ध्यान में रखते हुए पालन करना व्यक्ति के लिए आवश्यक है। विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत ब्राम्हण व शूद्र, गुरू-शिष्य, पति-पत्नी, माता-पिता और पुत्र सभी के लिए अलग-अलग कर्तव्यों के निर्वाह की बात कहीं गई है।

विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, कुल धर्म, राजधर्म, युगधर्म, मित्र धर्म, गुरू धर्म आदि आते हैं। इन सभी का हम यहां संक्षेप में उल्लेख करेगें।

1. आश्रम धर्म :- हिन्दू शास्त्रकारों ने व्यक्ति के जीवन का चार अवस्थाओं में विभाजित किया है जिन्हें ब्रहम्चर्य, आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और सन्यास आश्रम कहा गया है। ब्रहम्चारी गुरू के आश्रम में सादा जीवन व्यतीत करते हुए विद्याध्ययन, अपने व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास तथा मानवोचित गुणों से अपने को विभूषित करता था। धर्म, अर्थ और काम की पूर्ति गृहस्थ के परम कर्तव्य थे । वह पंच महायज्ञों के द्वारा अन्य लोगों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करता था और सन्तानोत्पत्ति के द्वारा समाज की

निरन्तरता में योग देता था। वानप्रस्थी निष्काम भाव से धर्म-संचय और मानव कल्याण के लिए अपने आपको लगा देता था। वह सम्पत्ति, परिवार और संसार का मोह त्याग कर जंगल में कुटिया बनाकर रहता था तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्य आश्रमों के लोगों का मार्ग-दर्शन करता था। संन्यासी का धर्म संसार का पूर्णतया त्याग करके अपने आपको परम सत्य की खोज में लगाना, ईश्वर में लीन करना और मोक्ष-प्राप्ति की ओर अग्रसर होना था।

2. **वर्ण धर्म** :- वर्ण-धर्म के अन्तर्गत चारों वर्णो अर्थात् ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रत्येक के अलग-अलग कर्तव्य बतलाये गये हैं। ब्राहम्ण का धर्म अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ और धार्मिक कार्यो की व्यवस्था करना, आदि है। क्षत्रिय का जीवन व सम्पत्ति की रक्षा, युद्ध और प्रशासन है, वैश्य का कृषि, उद्योग एवं व्यवसाय से धनोपार्जन और विभिन्न वर्णो की आवश्यकताओं की पूर्ति और शुद्र का उपर्युक्त तीनों वर्णो की मन, वचन व कर्म से सेवा करना है।

3. **कुल धर्म** :- कुल धर्म का लक्ष्य पारिवारिक संगठन को बनाये रखना, कुल परम्पराओं की रक्षा और विभिन्न संस्कारों को पूर्ण करना है। परिवार के सदस्य के रूप में व्यक्ति के अन्य सदस्यों के प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं। पति का पत्नी के प्रति, पत्नी का पति के प्रति, माता-पिता का सन्तान के प्रति और सन्तान का माता-पिता के प्रति, भाई का भाई के प्रति कुछ कर्तव्य, कुछ धर्म होता है। परिवार में प्रत्येक सदस्य से उसकी विशिष्ट प्रस्थिति और आयु के अनुसार व्यवहार करने की आशा की जाती है।

4. **राज-धर्म** :- राज धर्म के अन्तर्गत राजा या शासक के प्रजा का प्रति कुछ कर्तव्य होते हैं जिनका पालन करना उसके लिए जनहित की दृष्टि से आवश्यक है। राजा का धर्म है कि वह राजोचित व्यवहारों का पालन करें अर्थात् उसे दृढ़-प्रतिज्ञ होना चाहिए, अपने कर्मचारियों के पोषण की समुचित व्यवस्था, योद्धाओं का आदर-सत्कार करना एवं उद्देश्य प्राप्ति के लिए कुटिल नीति का भी प्रयोग कर लेना चाहिए।

5. युग धर्म :- युग धर्म को काल के धर्म के नाम से भी पुकारते हैं। हिन्दू शास्त्रकार इस तथ्य से परिचित थे कि समय परिवर्तन के साथ-साथ शक्ति के कर्तव्यों में परिवर्तन आना भी आवश्यक है। जो धर्म स्थिर हो जाता है, जिसमें गति नहीं रहती, वह मनुष्य के व्यवहारों को अधिक समय तक प्रभावित नहीं कर पाता और विघटित होने लगता है। मनुस्मृति, पाराशर स्मृति और पद्मपुराण में युग धर्म की चर्चा की गयी है। अलग-अलग व्यक्ति के अलग-अलग कर्तव्य बताये गये हैं। हर युग में परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार नैतिक संहिताओं में परिवर्तन लाना आवश्यक होता है।

6. मित्र धर्म :- मित्र धर्म के अन्तर्गत एक मित्र के दूसरे मित्र के प्रति कर्तव्य आते हैं, जो दोनों पक्षों के लिए समान रूप से मान्य होते हैं। मित्र और मित्र में आयु, धन और पद के आधार पर किसी प्रकार का कोई भेद नहीं किया जाता । एक मित्र का अपने मित्र के प्रति यह कर्तव्य है कि वह सुख-दुख में उसका साथ दें, कर्तव्य का पालन करने के लिए उसे प्रेरित करें, मन, कर्म और वचन से उसकी रक्षा करें और आवश्यकता पड़ने पर उसके लिए सब प्रकार का त्याग करने के लिए तत्पर रहे।

7. गुरू धर्म :- हिन्दू समाज में गुरू को बहुत ऊंचा स्थान प्रदान किया गया है, परन्तु साथ ही उसके कुछ कर्तव्य (धर्म) भी बतलाये गये हैं, उसे सदैव अपने शिष्यों की हित कामना, लोभ एवं दम्भ से दूर रहना तथा अहिंसा और त्याग भावना से ज्ञान का प्रसार करना चाहिए।

सामान्य तथा विशिष्ट धर्म में अन्तर

सामान्य और विशिष्ट धर्म में कुछ अन्तर पाये जाते हैं : -

1. सामान्य धर्म का क्षेत्र व्यापक है जबकि विशिष्ट धर्म का क्षेत्र अपेक्षाकृत रूप में सीमित है। इसी कारण सामान्य धर्म को 'मानव धर्म' भी कहा गया है।
2. सामान्य धर्म का सम्बन्ध प्रमुखतः ईश्वर प्राप्ति के साथ है जबकि विशिष्ट धर्म का सम्बन्ध लौकिक और व्यवहारिक जीवन के साथ।

3. ईश्वरीय विश्वास तथा देवी-देवताओं की पूजा सामान्य धर्म के अन्तर्गत और कर्तव्य पालन विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत आते हैं।

4. सामान्य धर्म सम्पूर्ण समाज के कल्याण से सम्बन्धित है जबकि विशिष्ट धर्म अन्य व्यक्तियों के संदर्भ में दायित्व निर्वाह से।

5. सामान्य धर्म का प्रमुख लक्ष्य मानवीय गुणों के विकास से है और विशिष्ट धर्म का लक्ष्य विभिन्न व्यक्तियों और समूहों में सामंजस्य तथा समाज में संगठन बनाये रखने से ।

6. यदि सामान्य धर्म और विशिष्ट धर्म के आदेशों में कहीं टकराव की स्थित पैदा हो जाय तो व्यक्ति से विशिष्ट धर्म के अनुरूप आचरण करने की आशा की गयी है।

7. सामान्य धर्म के नियम स्थिर हैं जबकि विशिष्ट धर्म के नियम सत्य, स्थान और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन की छूट भी देते हैं।

8. सामान्य धर्म की प्रकृति समूहवादी है जबकि विशिष्ट धर्म की व्यक्तिवादी ।

5.1.3 आपद्धर्म

आपद्धर्म का तात्पर्य यह है कि आपत्तिकाल में या संकट के समय व्यक्ति को अपने सामान्य और विशिष्ट धर्म में कुछ परिवर्तन कर लेना चाहिए। रोग, शोक, विपत्ति और धर्म-संकट की स्थिति में व्यक्ति को कर्तव्य-नियमों में कुछ छूट दी गयी है, अपवाद की अनुमति प्रदान की गयी है। यह परिस्थिति विशेष से सम्बन्धित अस्थायी धर्म है। जब व्यक्ति के कर्तव्यों की दृष्टि से दो धर्मो के बीच टकराव की स्थिति पैदा हो जाय तो अधिक महत्वपूर्ण धर्म या दायित्व के निर्वाह के लिए दूसरे धर्म के नियमों को कुछ समय के लिए छोड देना आपद्धर्म है। आपद्धर्म के नियमों के अन्तर्गत व्यक्ति को अपने प्राणों की रक्षा के लिए किसी भी प्रकार का आचरण करने की स्वीकृति दी गयी है। उदाहरण के रूप में

'कल्याण' के हिन्दू संस्कृति विशेषांक में एक ऋषि का वर्णन मिलता है जो अकाल के कारण भूख से पीडित और मरणासन्न स्थिति में थे। इस स्थिति में अपने वर्ण धर्म पालन की बजाय अपने प्राणों की रक्षा करना उनके लिए अधिक महत्वपूर्ण था। अतः उन्होंने एक शुद्र से जूठे उड़द लेकर खा लिये।[9] धर्मानुकूल जीने के लिए यह आवश्यक है कि पहले जीवित रहा जाय। आपत्तिकाल में धर्म की रक्षा के लिए झूठ बोलने तक की आज्ञा है। केवल असामान्य परिस्थितियों में ही आपद्धर्म का सहारा लेने की स्वीकृति प्रदान की गयी है।

5.2 हिन्दू सामाजिक जीवन में धर्म का महत्व

हिन्दू धर्म अगणित रूपों में हिन्दुओं के सामाजिक जीवन को अनुप्रमाणित करता रहा है। वह जन्म से लेकर मृत्यु तक सामान्यतः प्रत्येक हिन्दू के जीवन को अनेक धार्मिक विश्वासों, विधि-संस्कारों, आराधना विधियों और कर्तव्य पालन में दृढ़ आस्था आदि रूपों में प्रभावित करता रहा है। सामाजिक जीवन में निम्नलिखित रूपों में हिन्दू धर्म का प्रभाव परिलक्षित होता है।

1. धर्म ने व्यक्तित्व के निर्माण में सदैव सहायता पहुँचाती है। बालक के समाजीकरण में परिवार का विशेष महत्व है और परिवार सदैव से ही धार्मिक क्रियाओं का मुख्य केन्द्र रहा है। परिवार में धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन, धार्मिक कथाओं से बालकों को परिचित करना, सदस्यों में परस्पर कर्तव्य भावना तथा पारिवारिक प्रेम और त्यागपूर्ण पर्यावरण, बालक में समाज के नैतिक मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करने में उसमें सद्‌गुणों का विकास करने तथा उसके चरित्र निर्माण में निश्चित रूप में सहायक रहे हैं।

---
[9] कल्याण : हिन्दू संस्कृति विशेषांक, पृ. 1661

2. धर्म सामाजिक नियन्त्रण का भी एक महत्वपूर्ण साधन रहा है। धर्म में पाप-पुण्य , स्वर्ग-नरक के विचार निहित हैं जिनसे डर कर ही व्यक्ति समाज विरोधी कार्य नहीं करता है तथा नियमित व नियन्त्रित जीवन व्यतीत करता है।

3. धर्म ने व्यक्ति को कर्तव्यों का पालन करने के लिए सदैव प्रेरित किया है। अलग-अलग परिस्थितियों में प्रस्थिति के अनुरूप व्यक्ति के निश्चित स्वधर्म रहे हैं और अपने स्वधर्म का पालन करना उसका नैतिक कर्तव्य रहा है। पाप-पुण्य , स्वर्ग-नरक, कर्म और पुनर्जन्म की धारणा ने व्यक्ति को अपनी प्रस्थिति से सन्तुष्ट रहने और उचित रीति से अपनी भूमिका निभाने को प्रोत्साहित किया है।

4. हिन्दू धर्म ने व्यक्ति को अनेक मानसिक संघर्षो से बचाने में योग दिया है। व्यक्ति को यहां धर्म का आदेश दिया गया है, परन्तु फल के प्रति तटस्थ रहने को कहा गया है। परिणाम यह हुआ है कि हिन्दू समाज के लोग बहुत कुछ सीमा तक मानसिक संघर्षो से बचे रहे हैं।

5. भारतीय संस्कृति की निरन्रता को बनाये रखने में हिन्दू धर्म ने विशेष योग दिया है। इतिहास बतलाता है कि अनेक संस्कृतियां काल का ग्रास बन गयीं, विकसित हुई और मिट भी गयी, परन्तु भारतीय संस्कृति का अस्तित्व आज भी बना हुआ है। इसका मुख्य कारण हिन्दू धर्म का व्यवहारिक स्वरूप है।

6. व्यक्ति में सद्गुणों का विकास करने की दृष्टि से धर्म ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। यदि व्यक्ति हिन्दू धर्म में बताये गये कर्तव्यों एवं निर्देशों का पालन करें तो वह एक सच्चरित्र व्यक्ति एवं समाजोपयोगी प्राणी बन सकता है।

7. हिन्दू धर्म सामाजिक एकता का पोषक है। इसने सभी लोगों को अपने-अपने निर्धारित कर्तव्यों को निभाने तथा सभी प्राणियों के हित एवं कल्याण की बात कही है। हिन्दू धर्म में बन्धुत्व, प्रेम, सहयोग और संगठन पर विशेष जोर दिया गया है।

8. मनोरंजन प्रदान करने की दृष्टि से भी धर्म ने समाज की महत्वपूर्ण सेवा की है। धर्म के अन्तर्गत समय-समय पर सम्पन्न किये जाने वाले उत्सवों, त्यौहारों एवं कर्मकाण्डों ने मानव को यन्त्रवत व उदासीनता-युक्त जीवन से मुक्ति दिलाकर आनन्द एवं मनोरंजन के अवसर प्रदान किये हैं।

5.3 हिन्दू धर्म में कुछ दोष

जैन और बौद्ध धर्मो के प्रादुर्भाव के पश्चात हिन्दू धर्म में धीरे-धीरे कुछ दोष आते गये। इन धर्मो के प्रभाव को रोकने के उद्देश्य से समाज के विभिन्न वर्गों पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये, अनेक निषेधों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ और जातीय प्रतिबन्ध दृढ़ होते गये। स्मृतिकालीन युग में धर्म के नाम पर अनेक कर्मकाण्डों को प्रोत्साहित किया गया। समाज वैदिककालीन धर्म से दूर हटता गया और रूढ़िवादी धर्म सामाजिक व्यवस्था का आधार बनता गया। परिणाम यह हुआ कि मध्यकाल में हिन्दू समाज में अनेक सामाजिक कुरीतियां फैलने लगीं जिन्हें धर्म के नाम पर उचित ठहराया गया। रूढ़िवादी धर्म ने व्यक्ति-व्यक्ति में भेद उत्पन्न कर दिया, उसे निष्क्रिय और चेतना शून्य बना दिया। वह समूह और राष्ट्र के प्रति अपने स्वधर्म को भूल गया और मोक्ष तथा परलोक के बारे में अधिक सोचने लगा। धर्म का व्यवहारिक और उपयोगी पक्ष कमजोर होता गया और कर्तव्य-पालन की बजाय व्यक्ति बाह्य-आडम्बरों और विविध कर्मकाण्डों में फंस गया। धर्म के रूढ़िवादी स्वरूप के कारण हिन्दू समाज में अनेक कुप्रथाओं का विकास हुआ। देवदासी प्रथा का प्रचलन, विवाह सम्बन्धी अनेक आवश्यक निषेधों का प्रारम्भ, धर्म के नाम पर बाल-विवाहों को प्रोत्साहन, विधवा-पुनर्विवाह पर नियन्त्रण, सती-प्रथा को न्यायसंगत मानना, पुरूषों को बहुपत्नी-विवाह की आज्ञा, नैतिकता के दोहरे मापदण्ड का प्रारम्भ, स्त्रियों की स्थिति में गिरावट, अन्तर्विवाह और कुलीन विवाह का प्रचलन तथा समाज के एक बहुत बड़े वर्ग को अस्पृश्य कहकर उनके प्रति उपेक्षा का भाव और मानवीय अधिकारों से उसे वंचित

रखना आदि इनके कुछ उदाहरण हैं। यहां हमें इस बात को ध्यान में रखना होगा कि वे सब समस्याएं मौलिक हिन्दू धर्म से सम्बन्धित न होकर स्कृतिकालीन और मध्यकालीन हिन्दू धर्म से सम्बन्धित हैं।

वर्तमान समय में अनेक कारकों ने हिन्दू धर्म के प्रभाव को क्षीण करने में योग दिया है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, पाश्चात्य मूल्यों के प्रसार, शिक्षा के बढ़ते हुए प्रतिशत और प्रजातान्त्रिक राजनीतिक व्यवस्था तथा सरकारी नीतियों ने समाज को परम्परावाद से आधुनिकीकरण की ओर बढ़ने में कुछ सहायता पहुंचायी है। आज व्यक्ति पर विज्ञान और औद्योगिकी का प्रभाव बढ़ता जा रहा है, जीवन की विविध क्रियाओं में धर्म-निरपेक्षवाद को प्रोत्साहन मिलता जा रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज का व्यक्ति धर्म के नाम पर पाखण्डवाद को और अधिक सहन करने को तैयार नहीं है। यद्यपि आज धर्म के प्रभाव में कमी अवश्य दिखलायी पड़ती है तथापि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि धर्म ने हिन्दुओं के आदर्शो और व्यवहार के तरीकों को लम्बे समय तक प्रभावित किया है और भारतीय सामाजिक व्यवस्थाओं पर इनका व्यापक प्रभाव रहा है।

5.4 हिन्दू धर्म और परिवर्तन

प्रगति और परिवर्तन प्रत्येक समाज की निरन्तरता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। हिन्दू धर्म में आवश्यक परिवर्तनों के महत्व को स्वीकार कर उनके लिए स्थान रखा गया है। डॉ0 राधाकृष्णन ने इस सम्बन्ध में लिखा है, "किसी भी जीवित समाज में निरन्तर बने रहने की स्थिति और परिवर्तन की शक्ति, दोनो ही होनी चाहिए। किसी असभ्य समाज में एक पीढी से लेकर दूसरी पीढ़ी तक शायद ही कोई प्रगति होती हो। परिवर्तन को बहुत सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है और सारी मानवीय ऊर्जाएं स्थिति को यथापूर्व बनाये रखने पर केन्द्रित रहती हैं। फिर किसी सभ्य समाज में प्रगति और परिवर्तन ही उसकी गतिविधि की जान होते हैं। समाज के लिए अन्य कोई वस्तु इतनी हानिकारक नहीं है,

जितना कि घिसी-पिटी विधियों और पुरानी पड़ गयी आदतों से चिपके रहना, जोकि केवल जड़ता के कारण बची चली जाती हैं, हिन्दू-विचारधारा में आवश्यक परिवर्तनों के लिए स्थान रखा गया है।............हमारी चलित संस्थाएं नष्ट हो जाती हैं। वे अपने समय में धूमधाम से रहती हैं और उसके बाद समाप्त हो जाती हैं। वे काल की उपज होती हैं और काल का ही ग्रास बन जाती हैं, परन्तु हम धर्म को इन संस्थाओं के किसी भी समूह के साथ एक या अभिन्न नहीं समझ सकते। वह इसलिए रहता है क्योकि इसकी जड़े मानवीय प्रकृति में हैं और वह अपने किसी भी ऐतिहासिक रूप के समाप्त हो जाने के बाद भी बचा रहेगा। धर्म की पद्धति परीक्षणात्मक परिवर्तन की है। सब संस्थाएं परीक्षण हैं, यहां तक कि सम्पूर्ण जीवन भी परीक्षण ही है।" स्पष्ट है कि समाज की प्रगति हेतु परिवर्तन आवश्यक है, संस्थाएं समय विशेष की उपज होती हैं और समय के साथ-साथ परिवर्तित और नष्ट भी हो जाती हैं। धर्म और इन संस्थाओं को अभिन्न रूप से जुडा हुआ नहीं माना जा सकता।

एक युग विशेष के विश्वासों, प्रथाओं और संस्थाओं को उसी रूप में दूसरे युगों के लिए स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार इनमें परिवर्तन लाना आवश्यक होगा, अन्यथा ये समाज की प्रगति में बाधक बन जाएंगी। हिन्दू शास्त्रकार इस बात से परिचित थे कि समाज एक धीरे-धीरे होने वाली उन्नति है। सड़ी-गली और मृत वस्तुओं को हटाकर रास्ता साफ करना पड़ता है। विज्ञानेश्वर ने बतलाया है कि अनुपयुक्त कानूनों को , चाहे वे शास्त्रों द्वारा स्वीकृत ही क्यों न हों, समाज को अस्वीकार कर देने का अधिकार है। कानून आवश्यकता के अनुसार बनाये जाते हैं, समय विशेष की वे उपज होते हैं और समय के बदलने पर समाप्त भी कर दिये जाते हैं। हिन्दू कानूनों में शास्त्रों के भाष्यकारों ने समय-समय पर आवश्यक परिवर्तन किये हैं। सामाजिक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न होने से बचाने के लिए आवश्यक है कि परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ में भारतीय सामाजिक संस्थाओं का विश्लेषण किया जाय, उनमें आवश्यक परिवर्तन को स्वीकार किया जाय और धर्म के मौलिक सिद्धान्तों और मान्यताओं को बनाए रखा जाय।

डॉ0 राधाकृष्णन ने लिखा है, "इस भाग्य-निर्णायक महत्वपूर्ण घड़ी में जबकि हमारा समाज एक मार्गहीन गहन वन बन गया है, हमें अपने पूर्वजों के स्वरों के साथ-साथ नयी ध्वनियों को भी सुनना चाहिए। कोई भी प्रथा सब कालों में सब मनुष्यों के लिए लाभदायक नहीं हो सकती। यदि हम अतीत के नियमों से बहुत अधिक चिपके रहेगें और मृतों का जीवन धर्म जीवितों का मृत धर्म बन जायेगा, तो सभ्यता मरकर रहेगी। हमें बुद्धिसंगत परिवर्तन करने ही होंगे। यदि कोई शरीर या संगठन अपने मल को बाहर निकालने की शक्ति खो बैठता है तो वह नष्ट हो जाता है।" स्पष्ट है कि समय के साथ-साथ प्रथाओं और संस्थानों में आवश्यक परिवर्तन किये जाने चाहिए। हमें अपने पूर्वजों की कृतियों पर गौरव अवश्य होना चाहिए, लेकिन जो कुछ वे कर गये हैं उसी से सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। हमें प्राचीन को पुनः नहीं लौटाना है, वैदिक परम्पराओं को यथावत् स्वीकार कर उनके अनुसार आचरण को नहीं ढालना है, लेकिन नवीन के निर्माण के लिए अतीत को आधार अवश्य बनाना है, अपने पूर्वजों के सफल अनुभव का लाभ अवश्य उठाना है, अपने इतिहास से बहुत कुछ सीखना और आगे बढ़ना है। हम कुछ नवीन सिरे से प्रारम्भ नहीं कर सकते, अन्य राष्ट्रों के अनुभवों को उधार भी नहीं लिया जा सकता, केवल उनका अन्धानुकरण भी नहीं किया जा सकता, हमें स्वयं अपने अतीत को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ना होगा, परिवर्तनों के प्रति उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना होगा।

वर्तमान समय में यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से धर्म के प्रकार्यो और अपकार्यो पर विचार, वस्तुस्थिति का सही मूल्यांकन और आवश्यक तथ्यों को एकत्र किया जाय, सामाजिक परिवर्तनों की दिशा का पता लगाया जाय और आवश्यकतानुसार परिवर्तनों को स्वीकार किया जाय।

5.5 संस्कृति

संस्कृति ही है जो मनुष्य को पशु से पृथक कर देती है। इसीलिए प्रायः यह कहा जाता है कि संस्कृति का उद्भव मानव के मध्य ही होता है। पशु संस्कृति के अधिकारी नहीं होते और यदि होते भी हैं तो वह नाममात्र के लिए या 'न' के बराबर। किसी ने सच ही कहा है कि "मनुष्य के पास से उसकी संस्कृति को छीन लीजिए, जो कुछ शेष रहेगा, वह निश्चित ही मानव नहीं, अपितु एक प्रकार का बन्दर होगा।" इसी कारण श्री हॉबल का कथन है कि संस्कृति अनोखे रूप में एक मानव घटना है और वह इस अर्थ से कि सभी प्राणियों में मनुष्य ही एक अकेला ऐसा प्राणी है जो संस्कृति को बनाने और उसे बनाए रखने की क्षमता रखता है। यही 'संस्कृति' इस अध्याय का अध्ययन-विषय है।

5.5.1 संस्कृति से आशय

संस्कृति को विभिन्न विद्धानों ने अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। साहित्यकारों के लिए संस्कृति जीवन का प्रकाश और कोमलता है। कुछ विद्धान संस्कृति से नैतिक, आध्यात्मिक तथा बौद्धिक उन्नति समझते हैं। शाब्दिक अर्थ में, 'संस्कृति' शब्द 'संस्कार' का रूपान्तर है। एक हिन्दू को अपने जीवन को परिमार्जित करने के लिए अनेक प्रकार के संस्कारों को करना पड़ता है और उसके बाद वह कहीं 'संस्कृत' कहा जाता है। इसी प्रकार इतिहासकारों के लिए एक देश का कलात्मक अथवा बौद्धिक विकास ही संस्कृति है। परन्तु मानवशास्त्री 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थ में करते हैं। उनके लिए संस्कृति सीखे हुए व्यवहार की वह समग्रता है जिसमें एक बच्चे का व्यक्तित्व पलता और पनपता है।

प्रारम्भिक मानवाशास्त्रियों में श्री टायलर ने सर्वप्रथम संस्कृति शब्द को परिभाषित किया और इस शब्द का विस्तृत प्रयोग अपनी कृतियों में किया। आपके अनुसार "सांस्कृति वह जटिल समग्रता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, आचार, कानून , प्रथा ऐसी

ही अन्य क्षमताओं और आदतों का समावेश रहता है कि जिन्हें मनुष्य समाज के सदस्य के नाते प्राप्त करता है। इस परिभाषा में इस बात पर बल दिया गया।

संस्कृति मानव की सामाजिक विरासत है, उस व्यक्ति को समाज का 'उपहार' है जो उसे समाज के सदस्य के नाते प्राप्त होता है और भी स्पष्ट रूप में, श्री टायलर के अनुसार संस्कृति से हमारा तात्पर्य उस सब कुछ से होता है जिसे मानव अपने सामाजिक जीवन में सीखता है या समाज में पाता है। संस्कृति प्रकृति के देन नहीं, बल्कि समाज की देन है, यह समाज का मानव को श्रेष्ठतम वरदान है।

श्री पिडिंगटन ने संस्कृति को एक-दूसरे ढंग से परिभाषित किया है। आपके शब्दों में संस्कृति उन भौतिक तथा बौद्धिक साधनों या उपकरणों का सम्पूर्ण योग है जिनके द्वारा मानव अपनी प्राणिशास्त्रीय तथा सामाजिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि तथा अपने पर्यावरण से अनुकूल करता है।" इस प्रकार श्री पिडिंगटन के अनुसार किसी भी मानव की संस्कृति में दो प्रकार की घटनाओं का समावेश होता है - प्रथमतः भौतिक वस्तुएँ जिन्हें मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बनाता है जैसे - उपकरण, औजार, बर्तन, वस्त्र, मकान, मन्दिर, मूर्तियां आदि। द्वितीयतः ज्ञान, विश्वास, मूल्य आदि अभौतिक या अमूर्त घटनाओं का भी समावेश संस्कृति में होता है। संस्कृति के ये दोनों पक्ष एक दूसरे से सम्बन्धित तथा एक दूसरे के पूरक होते हैं।

श्री मैलिनोवस्की के अनुसार "संस्कृति प्राप्त आवश्यकताओं की एक व्यवस्था तथा उद्देश्यमूलक क्रियाओं की एक संगठित व्यवस्था है।" आपके मतानुसार संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के समग्र तरीके या ढंग आ जाते हैं जो व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं और उसे प्रकृति के बन्धनों से मुक्त करते हैं। इस प्रकार श्री मैलिनोवस्की के अनुसार संस्कृति मानव का वह साधन है जिसके द्वारा या जिसके माध्यम से वह अपने साधनों को प्राप्त करता है अर्थात् अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

श्री हॉबल के मतानुसार उन सब व्यवहार-प्रतिमानों की समग्रता को संस्कृति कहते हैं जिन्हें मानव अपने सामाजिक जीवन में सीखता है। आपके शब्दों में "संस्कृति सम्बन्धित सीखे हुए व्यवहार-प्रतिमानों का सम्पूर्ण योग है जो एक समाज के सदस्यों की विशेषताओं को बतलाता है और जो इसलिए प्राणिशास्त्रीय विरासत का परिणाम नहीं होता है।" श्री हॉबल के मतानुसार संस्कृति वंशानुसंक्रमण के द्वारा निर्धारित नहीं होती है। संस्कृति तो पूर्णतया सामाजिक आविष्कारों का परिणाम होती है। दूसरे शब्दों में संस्कृति सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन के रूप में मानव का अविष्कार है। इसी कारण यह विचारों के आदान-प्रदान तथा शिक्षा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है और इस प्रकार इसकी निरन्तरता बनी रहती है। अतः श्री हॉबल के अनुसार, संस्कृति में किसी सामाजिक समूह विशेष की जीवन-विधि निहित होती है।

संस्कृति की एक संक्षिप्त तथा उपयोगी परिभाषा श्री हर्सकॉविट्ज ने दी है। आपके शब्दों में, "संस्कृति पर्यावरण का मानव-निर्मित भाग है।" यह परिभाषा हमारा ध्यान इस सत्य की ओर आकर्षित करती है कि मानव-जीवन दो प्रकार के पर्यावरणों में पलता है। पहला, प्राकृतिक पर्यावरण, और दूसरा सामाजिक पर्यावरण । मानव का सम्पूर्ण सामाजिक पर्यावरण ही उसकी संस्कृति है। इस सामाजिक पर्यावरण को मानव स्वयं बनाता है। इस निर्माण कार्य में प्राकृतिक घटनाओं या पर्यावरण का कुछ भी योग नहीं होता, ऐसी बात नहीं परन्तु एक प्राकृतिक चीज से जो कुछ भी मानव बनाता है वह उसकी कृति होती है और इनके सम्पूर्ण योग से ही संस्कृति का निर्माण होता है। उदाहरणार्थ, मिटटी एक प्राकृतिक वस्तु है परन्तु उसी मिटटी से मनुष्य जब अपने लिए बर्तन, मूर्ति आदि बना लेता है तो वे सब उसकी संस्कृति के अंग बन जाते हैं। वायु या पानी या पहाड़ संस्कृति नहीं है क्योंकि ये सभी प्राकृतिक पर्यावरण के अंग हैं और इनका निर्माण मानव ने नहीं किया है। संस्कृति के अन्तर्गत तो सम्पूर्ण पर्यावरण के अंग हैं और इनका निर्माण मानव ने नहीं किया है। संस्कृति के अन्तर्गत तो सम्पूर्ण पर्यावरण के उस भाग की उन वस्तुओं को सम्मिलित करते हैं जिन्हें स्वयं मानव ने बनाया है। 'वस्तुओं' से यहां हमारा तात्पर्य केवल भौतिक वस्तुओं से ही नहीं

बल्कि अभौतिक वस्तुओं से भी है। इस प्रकार संस्कृति में उपकरण, औजार, मशीन, आभूषण, मकान, प्रथा, परम्परा, कला, आचार, धर्म, भाषा आदि सभी भौतिक तथा अभौतिक वस्तुओं का समावेश रहता है क्योंकि इन सभी को मनुष्य ने बनाया है।

मानवशास्त्री, जैसा कि बील्स तथा हाइजॅर ने लिखा है - ''संस्कृति शब्द का प्रयोग कुछ निश्चित अर्थो में करते हैं, जैसे - संस्कृति (1) समस्त मानव जाति में एक समय विशेष में सामान्य जीवन के तरीके या जीवनयापन या रहन-सहन के नमूने हैं, या (2) समाजों के एक समूह, जिनमें थोड़ी-बहुत अन्तःक्रिया होती है, के रहन-सहन के तरीके हैं, या (3) व्यवहार के प्रतिमान हैं जो एक समाज विशेष में विशिष्ट रूप से पाए जाते हैं, या (4) व्यवहार करने के विशिष्ट तरीके हैं जो बड़े और जटिल रूप में संगठित समाज के विभिन्न भागों में विशेष रूप से पाए जाते हैं।''

5.6 संस्कृति की विशेषताएँ

संस्कृति की निम्नलिखित विशेषताएं उसकी वास्तविक प्रकृति को स्पष्ट करने में सहायक होंगी :-

1. **संस्कृति सीखी जाती है** :- जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, सीखे हुए व्यवहार प्रतिमानों के सम्पूर्ण योग को संस्कृति कहते हैं। प्रजातीय या शारीरिक विशेषताओं की भांति संस्कृति प्रजनन के माध्यम से व्यक्ति को प्राप्त नहीं होती, बल्कि वह जिस संस्कृति में जन्म लेता है उससे वह उसे सीखता है। मानव की भाषा व प्रतीकों के माध्यम से विचारों के आदान-प्रदान की शक्ति इस बात की द्योतक है कि वह दूसरों से संस्कृति के तत्वों को सीख सकता है। संस्कृतियों में भिन्नताएं इस कारण नहीं होती है कि लोगों की जन्मजात क्षमताएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं, बल्कि इसीलिए होती हैं कि उन्हें अलग-अलग तरीके से पाला-पोसा जाता है। जन्म के समय बच्चो में संस्कृति संगत व्यवहार करने का कोई भी

तरीका नहीं होता इन्हें तो वह बड़े होने के साथ-साथ सीखने की जटिल प्रक्रिया के माध्यम से प्राप्त करता है।

इस सम्बन्ध में एक बात यह स्मरणीय है कि जब हम यह कहते हैं कि संस्कृति सीखी जाती है तो इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि सभी सीखे हुए व्यवहार संस्कृति हैं। पशु भी बहुत कुछ सीख जाते हैं, परन्तु शायद ही कोई मानवशास्त्री उन्हें संस्कृति का अधिकारी मानता हो। पशुओं द्वारा सीखे हुए व्यवहार और मानव के संस्कृति पर आधारित व्यवहार में जो अन्तर है उसे समझे बिना संस्कृति की वास्तविक प्रकृति को नहीं समझा जा सकता। यह सच है कि पशु मानव की भांति कुछ व्यवहारों को सीख सकता है व सीखता भी है और इसी के आधार पर उसमें कुछ आदतें भी पनप जाती हैं। परन्तु केवल आदतों के आधार पर ही संस्कृति की यथार्थ व्याख्या सम्भव नहीं। इस सत्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि संस्कृति में आदतों या व्यवहारों का समावेश रहता है, परन्तु संस्कृति में निहित ये आदतें तथा व्यवहार-तरीके व्यक्तिगत आदतों तथा व्यवहारों से इस अर्थ में भिन्न हैं कि वे आदतें तथा व्यवहार-तरीके किसी व्यक्ति विशेष के नहीं बल्कि एक समाज के सभी या अधिकतर सदस्यों की सामान्य आदतें तथा व्यवहार तरीके होते हैं। पशुओं द्वारा सीखे हुए व्यवहार वैयक्तिक होते हैं इसीलिए उसे संस्कृति नहीं कहा जा सकता। इसके विपरीत मानव की संस्कृति व्यवस्था के व्यवहार-तरीके या आदते 'सामूहिक आदतें' होती हैं जिसे हम जन-रीति रूढ़ि या प्रथा कहते हैं। इस प्रकार की कोई भी चीज पशु-समाज में नहीं मिलती। इस दृष्टिकोण से आज भी चिम्पांजी या बन्दर उसी स्तर पर हैं जिस पर वे सौ साल पहले थे, पर मानव आज वह नहीं है जो दस साल पहले था। नित्य नये ढंग से प्रकृति का विकास मानव ही कर सकता है और करता भी है, मानव ही एकमात्र संस्कृति का निर्माण करने वाला प्राणी है। दूसरे शब्दों में संस्कृति मानव-समाज में ही पनपती है, मानव द्वारा मानव-समाज में ही संस्कृति का निर्माण, विकास, परिमार्जन और विस्तार होता है।

2. संस्कृति में संचारित या हस्तान्तरित होने का गुण निहित है :- संस्कृति को केवल सीखा ही नहीं जा सकता, अपितु इसे एक मानव से दूसरे मानव तक फैलाया या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित भी किया जा सकता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, पशु भी बहुत कुछ सीखने की क्षमता रखते हैं परन्तु उनके इन सीखे हुए व्यवहारों व अनुभवों से दूसरे पशु लाभ नहीं उठा सकते क्योंकि अपने विचारों तथा अनुभवों को दूसरों तक पहुँचाने तथा फैलाने की क्षमता उनमें नहीं होती। मानव अपनी भाषा और प्रतीकों की सहायता से यह काम बड़ी सरलता से कर सकता है और अपनी संस्कृति को दूसरे लोगों में फैला देता है या एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित कर देता है। संस्कृति के इस गुण का तात्पर्य यह हुआ कि मानव अपनी पिछली पीढ़ियों की कृतियों के आधार पर अपना वर्तमान जीवन-तरीका प्रारम्भ करता है और प्रत्येक पीढ़ी को फिर शुरू से सब कुछ सीखना या अविष्कार करना नहीं पड़ता है। उदाहरणार्थ यदि एक पीढ़ी बैलगाडी का अविष्कार करती है तो दूसरी पीढी को फिर से बैलगाडी बनाने के तरीकों को नहीं खोजना पडेगा । वह अपनी पिछली पीढ़ी से बैलगाडी बनाने के तरीकों को सीख लेगें और इस प्रकार प्राप्त अनुभवों और ज्ञान के आधार पर बैलगाडी से अधिक उन्नत ढंग से यातायात के साधन का अविष्कार करने का प्रयत्न करेगी। जिसके फलस्वरूप साइकिल या रेलवे इंजन का अविष्कार होगा। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति में संचारित तथा हस्तान्तरित होने के गुण निहित होने के कारण ही संस्कृति का विकास, विस्तार, परिमार्जन और परिवर्द्धन सम्भव होता है। इससे संस्कृति की एक अन्य विशेषता स्पष्ट हो जाती है और वह यह है कि संस्कृति अपने विकास, विस्तार तथा निरन्तरता के लिए किसी एक व्यक्ति या समूह पर निर्भर नहीं रहती क्योंकि संस्कृति अनेक व्यक्तियों की अन्तःक्रिया तथा एकाधिक पीढ़ियों की कीर्तियों का फल होती है।

3. संस्कृति प्रत्येक समाज में एक विशेष प्रकार की होती है :- प्रत्येक समाज की अपनी एक विशिष्ट संस्कृति होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रत्येक

समाज की भौगोलिक तथा सामाजिक परिस्थितियां भी अलग-अलग होती हैं। संस्कृति पूर्णतया सामाजिक अविष्कार का परिणाम होती है। ये सामाजिक आवश्यकताएं प्रत्येक समाज में भिन्न-भिन्न होती हैं। इसी कारण संस्कृति का रूप या स्वरूप भी प्रत्येक समाज में अलग होता है। इन सांस्कृतिक भिन्नताओं का परिणाम यह होता है कि एक समाज के सदस्यों के ब्यवहारों की विशेषताएं दूसरे समाज के सदस्यों के व्यवहारों से पृथक होती है। इतना ही नहीं संस्कृति में परिवर्तन तभी होती है जब वह उस समय के विशिष्ट व्यवहारों में परिवर्तन होता है। इन विशिष्ट व्यवहारों में परिवर्तन सभी समाजों में एक से नहीं होते, इस कारण सभी समाजों में सांस्कृतिक परिवर्तन की दशा, गति और स्वरूप भी एक सा नहीं होता । अतः स्पष्ट है कि प्रत्येक समाज में संस्कृति की भिन्नता स्वाभाविक ही है। सर्व श्री बील्स तथा हाईजर ने भी लिखा है कि "ऊपर से देखने से ऐसा लगता है कि न्यूयार्क या पेरिस और एस्किमों की संस्कृतियों में पर्याप्त अन्तर है, परन्तु यदि इन दोनों संस्कृतियों का विश्लेषण किया जाए तो उनमें सामान्य विशेषताओं को ढूंढा जा सकता है। विभिन्न संस्कृतियों की सामान्यतया को ढूंढने का सबसे सीधा तरीका यह है कि उनके कार्यो का विश्लेषण किया जाय तो उनमें सामान्य विशेषताओं को ढूंढा जा सकता है।" विभिन्न संस्कृतियों की सामान्यता को ढूंढने का सबसे सीधा तरीका यह है कि उनके कार्यो का विश्लेषण किया जाए। ऐसा करने पर यह मालुम होगा कि कुछ सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रत्येक संस्कृति में अलग-अलग तरीके हैं । किसी भी संस्कृति के अध्ययन से यह पता चल जाता है कि संस्कृति समाज के सदस्यों की कुछ शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती करती है। संस्कृति उन साधनों को प्रस्तुत करती है जिनकी सहायता से मनुष्य को वस्त्र तथा निवास प्राप्त होता है वह जिन्दा रहता है और समाज की निरन्तरता बनी रहती है परन्तु समाज की निरन्तरता के लिए इतना ही पर्याप्त नहीं है। समाज व्यवस्था भी आवश्यक है। संस्कृति उन साधनों को प्रस्तुत करती है जिनकी सहायता से मनुष्य को वस्त्र तथा निवास प्राप्त होता है, वह जिन्दा रहता है और समाज की निरन्तरता के लिए पर्याप्त नहीं है। समाज व्यवस्था भी आवश्यक है। संस्कृति समाज के

सदस्यों के सम्बन्धों को नियमित करती है और उन्हें ज्ञान और अनुभव हस्तान्तरित करती है। साथ ही अनेक प्रकार की प्रथा, परम्परा, जन-रीति ,धर्म आदि के माध्यम से भी संस्कृति अपने समाज के सदस्यों के व्यवहार में एकरूपता उत्पन्न करती है। ये कुछ ऐसे कार्य हैं जो प्रत्येक समाज की संस्कृति की ही विशेषता है, यद्यपि इनके स्वरूपों में भिन्नताएं होती हैं। इस प्रकार विभिन्न समाज की संस्कृतियों में भिन्नताएं और समानताएं दोनो ही होती हैं। स्वरूपों में भिन्नताएं और अनेक कार्यो में समानताएं या एकता सभी संस्कृतियों की एक प्रमुख विशेषता है।

4. **संस्कृति में सामाजिक गुण निहित होता है** :- संस्कृति की प्रकृति निश्चय ही सामाजिक है क्योंकि जैसा कि पहले कहा जा चुका है, संस्कृति मानव आवश्यकताओं की प्रतिक्रियास्वरूप सामाजिक अविष्कार का फल है। समाज की परम्परा संस्कृति को जीवित रखती है। संस्कृति सामाजिक इस अर्थ में भी है कि संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष या दो-चार व्यक्तियों की धरोहर नहीं होती, उसका विस्तार व्यापक और सामाजिक होता है, अर्थात् संस्कृति समाज के समस्त या अधिकतर सदस्यों का सीखा हुआ व्यवहार प्रतिमान होती है और इसीलिए संस्कृति एक समाज की सम्पूर्ण सामाजिक जीवन निधि का प्रतिनिधित्व करती है। इसी सामाजिक गुण के कारण समाज का प्रत्येक सदस्य संस्कृति को अपनाता है। चूंकि संस्कृति सबका सीखा हुआ व्यवहार प्रतिमान या व्यवहार प्रकारों की समग्रता है इस कारण इसमें व्यक्तिगत व्यवहारों पर सामाजिक दबाब डालने की शक्ति होती है। इसी सामाजिक दबाब के कारण सदस्यों की व्यवहार विधि में अधिक अन्तर या भिन्नताएं उत्पन्न नहीं हो पाती और इसके फलस्वरूप समाज के व्यवहार प्रतिमानों में एकरूपता होती है और संस्कृति के रूप या स्वरूप समाज के व्यवहार प्रतिमानों में एकरूपता होती है और संस्कृति के रूप या स्वरूप में भी एक प्रकार की स्थिरता बनी रहती है। परन्तु इस स्थिरता का तात्पर्य यह नहीं कि संस्कृति में परिवर्तन होता ही नहीं है, इसका तात्पर्य केवल इतना है कि संस्कृति एक अव्यवस्थित अवधारणा नहीं है क्यांकि जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, यह तो

सम्पूर्ण सामाजिक जीविन विधियों का प्रतिनिधित्व करती है। साथ ही एक समाज के सदस्यों को अपनी संस्कृति से कुछ आशॉए होती है । सदस्यों की ये आशाएं भी संस्कृति के सामाजिक गुण को ही बनाती है और वह इस अर्थ में कि ये आशाएं सामाजिक या सामूहिक अनुभवों, आदतों आदि की ही उपज होती है। संस्कृति के अन्तर्गत जो प्रथा, परम्परा, जन-रीति, रूढ़ि, धर्म, भाषा, कला आदि का समावेश होता है, उसी से यह स्पष्ट है कि संस्कृति में सामाजिक गुण निहित होते हैं क्योंकि ये प्रथा, परम्परा, जन-रीति, धर्म आदि व्यक्तिगत जीवन-विधि को नहीं बल्कि सामाजिक या सामूहिक जीवन-विधि को व्यक्त करते हैं।

5. समूह के लिए संस्कृति आदर्श होती है :- श्री मुरडॉक ने संस्कृति की इस विशेषता या प्रकृति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। आपके मतानुसार, ''काफी हद तक सामूहिक आदतों जिनसे संस्कृति का निर्माण होता है, व्यवहार के आदर्श-नियम या प्रतिमान माना या कहा जाता है।'' इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक समाज या समूहों के सदस्यों की दृष्टि में उनकी संस्कृति सामाजिक व्यवहार का एक आदर्श मान है और इस कारण उसे स्वीकार करना और उसी के अनुरूप अपने व्यवहार को ढालना ही उचित है। यद्यपि यह सच है कि व्यवाहारिक तौर पर इन आदर्शो को आदर्श के रूप में शायद ही ग्रहण किया जाता हो, फिर भी इस विषय में सचेतता अवश्य ही पाई जाती है, विशेषकर जब अपनी संस्कृति की तुलना दूसरी संस्कृति से करने की आवश्यकता होती है तो अपनी संस्कृति को आदर्श रूप में प्रस्तुत करने का मनोभाव उस समाज के अधिकतर लोगों में पाया जाता है। उदाहरणार्थ, धर्म को ही लीजिए। जब एक ईसाई पादरी एक हिन्दू को ईसाई धर्म को स्वीकार करने को कहता है तो वह हिन्दू धर्म की बुराइयों तथा ईसाई धर्म की अच्छाइयों को अतिरंजित रूप में प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार एक भारतवासी को प्रायः अपनी भारतीय संस्कृति के गुण-गान में मुखरित होते देखा जाता है। संस्कृति आदर्श इसलिए भी है कि यह व्यवहार प्रतिमान किसी व्यक्ति को व्यवहार नहीं है। इन्हें मानने से समाज या

समूह से प्रशंसा प्राप्त होती है और न मानने से निन्दा मिलती है। इसीलिए इन आदर्श सांस्कृतिक प्रतिमानों से सम्बन्धित सामूहिक अभिमतियों के बारे में व्यक्ति बहुत-कुछ सचेत रहता है।

6. संस्कृति मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करती है :- मानव समाज में संस्कृति के कुछ विशिष्ट कार्य होते हैं। वह मानव की प्राणिशास्त्रीय तथा सामाजिक दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन जुटाती है। किसी संस्कृति या सांस्कृतिक तत्व अथवा प्रतिमान की निरन्तरता इसी बात पर निर्भर होती है कि उसमें शारीरिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की क्षमता है या नहीं ? जिस प्रकार व्यक्ति आदत तभी बनी रहती है जबकि उससे व्यक्ति की सचेत या अचेत इच्छा या प्रेरणा की तृप्ति या पूर्ति होती है। इसी प्रकार संस्कृति की सामूहिक आदतों में भी समूह की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का गुण होता है। सम्पूर्ण संस्कृति तक ही समाप्ति हो सकती है यदि वह निरन्तर अपने समाज के सदस्यों को महत्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असफल रहे। वास्तव में एक संस्कृति के अन्तर्गत अनेक भाग और उपभाग होते हैं जो सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था में संगठित होते हैं यद्यपि इनमें से प्रत्येक भाग का एक विशिष्ट स्वरूप होता है, जैसे एक नाव या एक बर्तन, एक मूर्ति या एक प्रथा का एक स्वरूप होता है। इनमें से प्रत्येक का सम्पूर्ण जीवन-विधि में या सामाजिक जीवन में कोई न कोई कार्य होता ही है । ये व्यर्थ में ही नहीं बने रहते। इन समस्त भांगो और उप-भागों में जो पारस्परिक सम्बन्ध तथा प्रभाव होता है उनके सम्पूर्ण योग से ही संस्कृति के ढॉचे का निर्माण होता है और प्रत्येक भाग की सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था में जो योगदान होता है उसे उस भाग का कार्य कहते हैं, जो उसके स्वरूप से पृथक होता है। इस प्रकार एक नाव, जिसका स्वरूप नाप और चित्रों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है, कुछ कार्यो को भी करती है जैसे यातायात के साधन के रूप में या मछली पकडने में सहायक के रूप में कार्य करती है। उसी प्रकार ब्राहा रूप में, एक संस्कृति की एक प्रथा विशेष हमारे लिए अर्थहीन और

अनीखी प्रतीत हो सकती है परन्तु यदि सम्पूर्ण सांस्कृतिक ढांच के सन्दर्भ में उस प्रथा के कार्यो की हम सावधानी से विवेचना करें तो उसी प्रथा का वैज्ञानिक अर्थ स्पष्ट हो जाएगा। फिर वह एक अनोखी या बेतुकी प्रथा न रहकर सामाजिक तौर पर एक महत्वपूर्ण कार्य को करने वाली प्रतीत होगी। इस प्रकार संस्कृति के अन्तर्गत प्रत्येक इकाई का एक विशिष्ट महत्व तथा कार्य होता है जो सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की स्थिरता तथा निरन्तरता को बनाए रखने में सहायक होता है। प्रत्येक के बिना सम्पूर्ण का अस्तित्व असम्भव है और सम्पूर्ण के बिना प्रत्येक अर्थहीन भी है। जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग का सम्पूर्ण शरीर को जीवित रखने में महत्वपूर्ण योगदान होता है, उसी प्रकार प्रथा या प्रत्येक संस्था का सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था की जीवन-विधि को कायम रखने में महत्वपूर्ण योगदान हुआ करता है।

7. **संस्कृति में अनुकूलन करने का गुण होता है** :- संस्कृति की इस विशेषता या गुण के दो स्पष्ट पहलू हैं - पहला, संस्कृति जड़ और स्थिर नहीं होती, गतिशीलता उसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है और दूसरा इस गतिशीलता या समय-समय पर संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के फलस्वरूप इसका अनुकूलन बाहरी शक्तियों से होता रहता है। इस प्रकार के अनुकूलन में संस्कृति का भौगोलिक पर्यावरण से अनुकूलन विशेष रूप से उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण हैं। एक जंगल में रहने वाला समुदाय अपनी सांस्कृतिक व्यवस्था या अनुकूलन जंगल की परिस्थितियों से करता है या टुण्ड्रा निवासियों की संस्कृति वहां के बर्फीले पर्यावरण के अनुकूल होती है। परन्तु इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि भौगोलिक पर्यावरण संस्कृति को निश्चित करता है, इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि भौगोलिक पर्यावरण सांस्कृतिक विकास की सीमाओं को निश्चित करता है जिसके आगे एक निश्चित सांस्कृतिक स्तर के लोग नहीं जा सकते । बर्फ से ढंके हुए टुण्ड्रा प्रदेश के अत्याधिक प्रतिकूल भौगोलिक पर्यावरण से अमेरिका जैसी संस्कृति का विकास सम्भव नहीं। भौगोलिक पर्यावरण उनके कच्चे मालों को प्रदान करता है जिससे संस्कृति के निर्माण कार्य में सहायता

मिलती है। परन्तु इस सम्बन्ध में यह ध्यान रहे कि मनुष्य स्वयं अपनी संस्कृति का निर्माता है, भौगोलिक पर्यावरण का कार्य उस निर्माण कार्य में आवश्यक कच्चे माल को प्रदान करना है परन्तु उस कच्चे माल से संस्कृति की झोपड़ी बनेगी या महल, इसे तो मनुष्य स्वयं ही निश्चित करता है। मानव भौगोलिक पर्यावरण के हाथ में एक कठपुतली मात्र नहीं कि वह जैसे भी चाहें उसे नचा सकता है। ज्यों-ज्यों की संस्कृति का विकास होता है, त्यों-त्यों भौगोलिक पर्यावरण का प्रभाव कम होता जाता है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति मानसिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना होता है। अतः इन आवश्यकताओं के अनुसार संस्कृति का स्वरूप भी प्रभावित होता है और इनमें होने वाले प्रत्येक महत्वपूर्ण परिवर्तन के साथ-साथ संस्कृति के ढॉचे तथा स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक युग की मांग पृथक-पृथक होती है, समय परिवर्तन के साथ-साथ अनेक पुरानी आवश्यकतांए समाप्त हो जाती हैं। इन दोनों अवस्थाओं के साथ ही अपना अनुकूलन कर सकने का गुण संस्कृति में होता है। अनेक मानवीय आवश्यकताओं तथा पर्यावरण सम्बन्धी व ऐतिहासिक परिस्थितियों या घटनाओं के कारण संस्कृति के ढांचे में परिवर्तन होता रहता है। परन्तु संस्कृति के सम्पूर्ण ढांचें में एकाएक परिवर्तन शायद ही होता हो। वास्तव में सम्पूर्ण सांस्कृतिक व्यवस्था के विभिन्न अंगो या इकाइयों में विभिन्न समय में परिवर्तन होता रहता है और इन परिवर्तनों के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि दूसरे अंग या इकाइयॉ भी अपना अनूकूलन परिवर्तित भागों या इकाइयों के अनुरूप करती रहे। चूंकि अपनी विविध आंवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए मनुष्य संस्कृति या इसकी विभिन्न इकाइयों को काम में लाता है, इसलिए मनुष्य को भी निरन्तर परिवर्तनशील इकाइयों के साथ अपना अनुकूलन करना पड़ता है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति के अपने स्वयं के ढांचे के परिवर्तन कर सकने के गुण ने समस्त पशुओं में मनुष्य को सर्वाधिक अनुकूलनशील प्राणी बना दिया है।

8. संस्कृति में सन्तुलन तथा संगठन होता है :- संस्कृति एक अखण्ड व्यवस्था नहीं है। संस्कृति के अन्तर्गत अनेक खण्ड या इकाइयां होती हैं, परन्तु ये सब आकस्मिक और व्यवस्थित नहीं होती। संस्कृति के इन खण्डों या इकाइयों में एक पारस्परिक सम्बन्ध तथा अन्तःनिर्भरता होती है जिसके कारण संस्कृति में एक प्रकार का सन्तुलन तथा संगठन पाया जाता है। यह वास्तव में इसलिए होता है ताकि संस्कृति की विभिन्न इकाइयां बिल्कुल पृथक होकर कार्य करती, प्रायः वे दूसरी इकाइयों के साथ मिलकर कार्य करती हैं। इस सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि इन इकाइयों का अस्तित्व शून्य में नहीं होता, ये एक सम्पूर्ण सांस्कृतिक ढांचे के अन्तर्गत व्यवस्थित ढंग से गुथी हुई या सम्बद्ध होती है। इस ढांचे के अन्दर प्रत्येक इकाई की एक निश्चित स्थिति तथा कार्य होता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि संस्कृति के सम्पूर्ण ढांचे में सन्तुलन और संगठन होता है और चूंकि संस्कृति की विभिन्न इकाइयां एक-दूसरे से सम्बन्धित तथा एक-दूसरे पर आधारित होती हैं, इस कारण संस्कृति के एक भाग में कोई परिवर्तन होने पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव दूसरे भागों पर भी अवश्य पड़ता है। अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि संस्कृति के विभिन्न भागों या इकाइयों में, जैसा कि श्री समनर ने कहा है, 'एकरूपता की ओर एक खिंचाव' होता है जिसके फलस्वरूप ये विभिन्न भाग एक साथ मिलते हैं और एक बहुत कुछ पूर्णतया संगठित समग्रता का निर्माण करते हैं। सम्पूर्ण समग्रता ही संस्कृति की यह विशेषता सादे, छोटे तथा पृथक समाजों में अधिक स्पष्ट रूपों में देखने को मिलती है क्योंकि ऐसे समाजों में तनाव उत्पन्न करने वाली शक्तियां कम होती हैं और संस्कृति के विभिन्न पक्षों तथा तत्वों में अधिक शीघ्रता से परिवर्तन नहीं होते।

9. संस्कृति अधि-वैयक्तिक तथा अधि-सावयवी है :- संस्कृति की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि अधि-वैयक्तिक और अधि-सावयवी दोनों ही है। इन दोनों विशेषताओं की विवेचना हम पृथक-पृथक कर सकते हैं। पहले संस्कृति अधि-वैयक्तिक है, इस विशेषता को लीजिए। यह सच है कि व्यक्ति संस्कृति का वाहक है और इन व्यक्तियों

को निकालकर किसी भी संस्कृति के अस्तित्व की चिन्ता करना मूर्खता है फिर भी संस्कृति किसी व्यक्ति विशेष की रचना है, यह सोचना भी गलत है। "जो कुछ भी एक मानव प्राणी या व्यक्ति विशेष अपने अधिकार में रख सकता है या अपने काम में लगा सकता है, कोई भी संस्कृति उससे कहीं अधिक होती है।" साथ ही संस्कृति की स्थिरता या निरन्तरता किसी एक व्यक्ति विशेष पर निर्भर करती है क्योंकि संस्कृति व्यक्ति का व्यवहार नहीं है, वह तो समूह-व्यवहारों की समग्रता है। एक वैयक्तिक आदत या व्यवहार-विधि उस व्यक्ति की मृत्यु के बाद समाप्त हो सकती है परन्तु सामूहिक आदतों या व्यवहार विधियों की निरन्तरता इस प्रकार समाप्त नहीं होती है - यह तो असंख्य व्यक्तियों की अन्तःक्रिया और विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती है। चूंकि संस्कृति की रचना और निरन्तरता दोनो ही किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं है, इसीलिए यह (संस्कृति) अधि-वैयक्तिक है।

संस्कृति अधि-वैयक्तिक ही नहीं अधि-सावयवी भी है, यह विचार श्री क्रोबर का है। संस्कृति के सम्बन्ध में अधि-सावयवी शब्द का प्रयोग श्री क्रोबर ने इस अर्थ में तथा इस बात पर बल देने के लिए किया था कि चूंकि प्राणिशास्त्रीय (सावयवी) क्षमताएं और संस्कृति (अधि-सावयवी) भिन्न कोटि की घटनाएं हैं, इसलिए संस्कृति का स्थान सावयवी ने ऊँचा मान लेना ही उचित है और वह भी इस अर्थ में कि संस्कृति मानव-जीवन को परिभाषित, नियन्त्रित तथा निर्देशित करती है। मानव इसके प्रभावों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता, संस्कृति के धारा-प्रवाह में उसे बहना ही पड़ता है। संस्कृति अधि-सावयवी इसलिए भी है कि केवल सावयवी घटनाएं संस्कृति को जन्म नहीं दे सकती। अगर यह सम्भव होता तो सभी पशु संस्कृति के अधिकारी होते हैं। पशु भी समाज में रहते हैं, पर वे संस्कृति को नहीं रखते क्योंकि संस्कृति, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, शारीरिक विशेषताओं की भांति प्रजनन के माध्यम से व्यक्ति को नहीं मिलती। सावयवी घटनाएं अथवा वंशानुसंक्रमण संस्कृतिक लक्षणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने की क्षमता नहीं रखते। श्री क्रोबर ने इस सत्य को एक उदाहरण देकर समझाया है। चीटियों के बहुत से ताजे

अण्डों में से केवल दो अण्डों को चुन लीजिए और बाकी सबको नष्ट कर दीजिए। उन दो अण्डों की गर्मी, नमी आदि के विषय में थोडा सा ध्यान रखिए। उन अण्डों से जो चीटियां उत्पन्न होंगी उनमें चींटी 'समाज' की समस्त विशेषताएं अन्य चीटियों की भांति ही स्पष्ट होगी, उनमें क्षमता, शक्ति, क्रियाशीलता आदि किसी भी विषय में कोई कमी नहीं होगी। परन्तु एक सर्वाधिक सभ्य राष्ट्र के सर्वोच्च वर्ग में से वंशानुसंक्रमण वाले दो-चार सौ मानव शिशुओं को चुनकर एक रेगिस्तानी प्रदेश या निर्जन स्थान में रख दीजिए और उन्हें खाने, पीने रहने आदि की चीजों को देते रहिए, पर उनको एक दूसरे से पृथक रखिए। यह सच है कि वे शिशु आयु में बढ़ते रहेंगे, परन्तु उन्हें और कुछ भी न होगा। उन्हें उस संस्कृति का एक तिहाई तो क्या, एक कण भी प्राप्त न होगा। जिससे उन्हें पृथक रखा गया है, उनसे केवल कला, ज्ञान, विज्ञान, धर्म आदि सबसे रहित गूंगों के एक झुण्ड मात्र का ही निर्माण होगा। उन्हें उस संस्कृति या सभ्य मानव की विशेषताओं का नाममात्र ज्ञान भी न होगा। उन्हें देखकर यह कभी प्रतीत न होगा कि उनके बाप-दादा सभ्य थे। वंशानुसंक्रमण या सावयवी घटनाएं उन मानव-शिशुओं को सभ्य या संस्कृति के अधिकारी नहीं बना सकती क्योंकि संस्कृति अधि-सावयवी है। श्री क्रोबर के ही शब्दों में, "चीटियों के लिए वंशानुसंक्रमण पीढ़ी-दर-पीढ़ी उन सब गुणों को बनाए रखता है जो कुछ भी उनका होता है, परन्तु वंशानुसंक्रमण सभ्यता या संस्कृति के एक कण को भी, जो विशेष रूप से मानवीय है, बनाए नहीं रखता और न ही रखा है क्योंकि वह उसे बनाए रख भी नहीं सकता"। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति अधि-सावयवी है।

क्लूखौन का मत है संस्कृति को अधिवैयक्तिक तथा अधि-सावयवी मानने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम यह मान लें कि संस्कृति का अस्तित्व मानने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम यह मान लें कि संस्कृति का अस्तित्व उसमें अंश ग्रहण करने वाले सभी व्यक्तियों के मर जाने के बाद या सभी सावयवी घटनाओं के नष्ट हो जाने के बाद भी बना रहेगा। इसका अर्थ केवल इतना हीं है कि संस्कृति का निर्माण, अस्तित्व और

निरन्तरता किसी व्यक्ति विशेष पर निर्भर नहीं है और न ही संस्कृति हमें वंशानुसंक्रमण से प्राप्त होती है। इसी अर्थ में संस्कृति अधिवैयक्तिक और अधि-सावयवी है।

तालिका संख्या 5.7

वृद्ध उत्तरदाताओं द्वारा धार्मिक कृत्यों की सम्पन्न करने की स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने की स्थिति					
		प्रतिदिन		कभी-कभी		नहीं	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	30-49	31	15.5	09	4.5	05	2.5
2	50-69	69	29.5	20	10.0	08	4.0
3	70 से ऊपर	39	19.5	11	5.5	08	4.0
	योग -	**139**	**64.5**	**40**	**20.0**	**21**	**10.5**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.7 में वृद्ध उत्तरदाताओं द्वारा धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने की स्थिति का उल्लेख किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 64.5 प्रतिशत वृद्ध प्रतिदिन धार्मिक कृत्यों जैसे पूजा-पाठ, आदि को सम्पन्न करते हैं। 26.0 प्रतिशत वृद्ध कभी-कभी पूजा पाठ कर लेते हैं जबकि 10.5 प्रतिशत वृद्ध किसी प्रकार की पूजा-अर्चना नहीं करते हैं। अध्ययन क्षेत्र के 50-69 आयु समूह के 29.5 प्रतिशत वृद्ध प्रतिदिन पूजा-पाठ करते हैं यह प्रतिशतांकं सर्वाधिक है। आयु समूह 30-49 वर्ष के 2.5 प्रतिशत वृद्ध पूजा-पाठ नहीं करते हैं। यह प्रतिशतांक सबसे कम है।

तालिका संख्या 5.8

युवा उत्तरदाताओं द्वारा धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने की स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने की स्थिति					
		प्रतिदिन		कभी-कभी		नहीं	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	**15-19**	09	4.5	11	5.5	30	15.0
2	**20-24**	24	12.0	30	15.0	21	10.5
3	**25-29**	34	17.0	21	10.5	20	10.0
	योग -	**67**	**33.5**	**62**	**31.0**	**71**	**35.5**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

युवा उत्तरदाताओं द्वारा धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करने की स्थिति का उल्लेख तालिका संख्या 5.8 में किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 35.5 प्रतिशत युवा ऐसे हैं जो कभी पूजा पाठ नहीं करते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। 33.5 प्रतिशत युवा प्रतिदिन पूजा पाठ करते हैं। 31.0 प्रतिशत युवा कभी-कभी पूजा पाठ करते हैं। आयु समूह 25-29 वर्ष के 17.0 प्रतिशत युवा प्रतिदिन पूजा पाठ करते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। पूजा-पाठ न करने वाले युवाओं का सर्वाधिक प्रतिशतांक 15.0 आयु समूह 15-19 वर्ष का है। आयु समूह 20-24 वर्ष के 15.0 प्रतिशत युवा कभी-कभी पूजा पाठ करते हैं।

तालिका संख्या 5.9

वृद्ध उत्तरदाताओं द्वारा मनोरंजन के साधनों के उपयोग करने की प्रकृति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	मनोरंजन के साधनों की प्रकृति							
		धार्मिक		फिल्मी		सामाजिक		राजनीतिक	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	**30-49**	10	5.0	05	2.5	15	7.5	15	7.5
2	**50-69**	42	21.0	04	2.0	31	15.5	20	10.0
3	**70 से ऊपर**	36	18.0	00	0.0	20	10.0	02	1.0
	योग -	**88**	**44.0**	**09**	**4.5**	**66**	**33.0**	**37**	**18.5**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.9 में वृद्ध उत्तरदाताओं द्वारा मनोरंजन के साधनों के उपयोग करने की प्रकृति का उल्लेख किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 44.0 प्रतिशत वृद्ध उत्तरदाता धार्मिक प्रकृति के मनोरंजनात्मक कार्यक्रमों को देखते सुनते हैं। यह प्रतिशत सर्वाधिक है। सामाजिक कार्यक्रमों को देखने वाले उत्तरदाताओं का प्रतिशतांक 33.0 हैं। 4.5 प्रतिशत उत्तरदाता फिल्मी कार्यक्रमां के माध्यम से मनोरंजन का लाभ प्राप्त करते हैं। 18.5 प्रतिशत वृद्ध राजनीतिक कार्यक्रमों में रूचि रखते हैं। आयु समूह 50-69 वर्ष के 21.0 प्रतिशत वृद्ध धार्मिक कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन प्राप्त करते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक हैं। 70 वर्ष से ऊपर आयु समूह के 1.0 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन प्राप्त करते हैं। यह प्रतिशंताक सबसे कम है। आयु समूह 30-49 के 2.5 प्रतिशत वृद्ध फिल्मी कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन प्राप्त करते हैं। फिल्मी कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन प्राप्त करने वाले वृद्धों का यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है।

तालिका संख्या 5.10

युवा उत्तरदाताओं द्वारा मनोरंजन के साधनों के उपयोग करने की प्रकृति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	मनोरंजन के साधनों की प्रकृति							
		धार्मिक		फिल्मी		सामाजिक		राजनीतिक	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	**15-19**	01	0.5	36	18.0	03	1.5	10	5.0
2	**20-24**	10	5.0	40	20.0	16	8.0	09	4.5
3	**25-29**	12	6.0	10	5.0	20	10.0	33	16.5
	योग -	**23**	**11.5**	**86**	**43.0**	39	**19.5**	**52**	**26.0**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.10 में युवा उत्तरदाताओं द्वारा मनोरंजन के उपयोग किए जाने के साधनों की प्रकृति का उल्लेख किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 43.0 प्रतिशत युवा फिल्मी कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन का लाभ प्राप्त करते हैं। 26.0 प्रतिशत युवाओं ने स्वीकार किया कि वे राजनीतिक कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन करते हैं। 19.5 प्रतिशत

युवा सामाजिक कार्यक्रमों को देखना व सुनना पसन्द करते हैं। धार्मिक कार्यक्रमों को पसन्द करने वाले युवाओं का प्रतिशंताक 11.5 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जैसे-जैसे आयु समूह में वृद्धि होती जाती है वैसे-वैसे धार्मिक कार्यक्रमों के प्रति रूचि बढ़ती जाती है। आयु समूह 20-24 के 20.0 प्रतिशत युवा फिल्मी कार्यक्रमों के माध्यम से अपना मनोरंजन करना पसन्द करते हैं।

अध्याय–6

अन्तर-पीढ़ी संघर्षः राजनीतिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में

- सैद्धान्तिक पृष्ठ भूमि
- समाज तथा राज्य
- सामाजिक , आर्थिक विकास और राज्य
- राजनीतिक प्रकार्य
- नेतृत्व
- अन्तर पीढ़ी संघर्ष : सारणीयन एवं विश्लेषण

6. अन्तर-पीढ़ी संघर्ष : राजनीतिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में

पूर्व अध्याय में अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य का उल्लेख किया गया है । प्रस्तुत अध्याय में राजनीतिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में अन्तर-पीढ़ी संघर्ष की स्थिति की विवेचना की गयी है।

प्रत्येक समाज में कुछ नियंत्रात्मक नियम होते हैं। आदिम और कृषक समाजों में इन नियमों की अभिव्यक्ति जनरीतियों और परंपराओं के रूप में दिखाई देती है। आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था में इन्होनें कानून का रूप ले लिया है। प्रत्येक समाज में इन प्रतिबंधात्मक नियमों को लागू करने के लिए कुछ निश्चित संगठन बनाए जाते हैं। आदिम समाजों में इन्हें जनजातीय सरदारों और सामुदायिक पंचायतों द्वारा लागू कराया जाता है। कृषक समाजों में प्राचीन और मध्ययुगीन राज्यों का विकास हुआ। औद्योगिक व्यवस्था में इस कार्य को आधुनिक राज्य करते हैं। आदिम समाजों में नियत्रंण की यह पद्धति अपनी आरंभिक अवस्था में होती है और इसका रूप एकदम अनौपचारिक होता है। अधिक जटिल समाजों में नियंत्रण की पद्धति अनौपचारिक और औपचारिक दोनों प्रकार की होती है। समाज की प्रकृति जितनी ही जटिल होती , उसकी सामाजिक नियंत्रण की पद्धति उतनी ही औपचारिक होती जाती है। सामाजिक नियंत्रण और इसे लागू करने वाले संगठनों की नियम प्रणाली और कार्य पद्धति को राजनीतिक संस्था कहते हैं। औद्योगिक व्यवस्था में राज्य, सरकार, इसके विभिन्न अंग, शक्ति, सत्ता तथा राजनीतिक दल, मुख्य रूप से राजनीतिक संस्थाओं के अंतर्गत आते हैं।

जब हम राजनीतिक संस्था की बात करते हैं तो स्पष्ट रूप से इसके तीन पक्ष हमारे सम्मुख होते हैं :-

1. नियंत्रण की पद्धति

2. नियंत्रण के लिए संगठन

3. नियंत्रण के लिए शक्ति का प्रयोग

उपरोक्त तीनों पक्षों का सबंध सामाजिक प्रणाली से हैं। अतः समाजशास्त्रियों की दृष्टि ने नियंत्रण की पद्धति, संगठन और शक्ति के वैध उपयोग की पद्धति के रूप में राजर्नाति, व्यापक सामाजिक प्रणाली की एक उपप्रणाली है। राजनीतिक संस्था का आशय नियंत्रण के नियमों, कार्यप्रणाली, संगठन और शक्ति के वैध प्रयोग से है।

आज की सामाजिक व्यवस्था में राज्य एक समूह के रूप में सामाजिक नियंत्रण का कार्य करता है। राज्य के कार्यो का संचालन सरकार द्वारा किया जाता है। बोटोमोर के अनुसार राजनीतिक संस्था समाज में सत्ता के बंटवारे से मुख्य रूप से सम्बन्धित होती है। सत्ता के साथ शक्ति का संबंध है जो शक्ति सम्पन्न होता है और जिसके हाथ में सत्ता होती है। वह सामाजिक नियंत्रण के नियमों को लागू करने की भी क्षमता रखता है। आधुनिक समाज में यह कार्य राज्य करता है।

मैक्स वेबर का मत है कि एक मानव समुदाय के रूप में राज्य एक निश्चित भूक्षेत्र के अंतर्गत भौतिक शक्ति के वैध प्रयोग के एकाधिकार का दावा करता है।

मैक्स वेबर द्वारा राज्य की दी गई परिभाषा में मुख्य जोर भूक्षेत्र और भौतिक शक्ति के वैध प्रयोग पर है। वेबर की इस परिभाषा की काफी आलोचना हुई है। क्या राज्य का आधार केवल शक्ति है ? शक्ति पर आधारित राज्य क्या टिकाऊ साबित हुये हैं ? इस परिभाषा की आलोचना के प्रसंग में इस तरह के सवाल उठाए गए हैं। यह सही है कि समाज की लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था शक्ति के प्रयोग की तुलना में सहमति पर अधिक आश्रित है। इस तरह शक्ति के सिद्धान्त में दुर्बलता अंनर्निहित है। कोई भी समाज अथवा राजनीतिक प्रणाली केवल शक्ति पर आधारित नहीं हो सकती है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि मैक्स वेबर ने शक्ति के वैध सहयोग के एकाधिकार पर बल दिया है। इस तरह आधुनिक समाज में राज्य के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति अथवा संगठन को दूसरे के

भौतिक शक्ति के इस्तेमाल करने का एकाधिकार नहीं है। शक्ति के वैध प्रयोग का एकाधिकार केवल राज्य के पास है। इससे यह नहीं सिद्ध होता है कि आधुनिक राज्य केवल भौतिक शक्ति पर आधारित है।

राज्य के संगठनात्मक ढांचे को सरकार कहते हैं। राज्य की स्वीकृति विचारधारा के अनुरूप सरकार समाज का नियंत्रण करती है।

राजनीतिशास्त्र और समाजशास्त्र दोनों विज्ञान राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन करते हैं लेकिन इनकी पद्धति में अतंर है। राजनीतिशास्त्र राजनीतिक संस्थाओं का अध्ययन इनकी समग्रता में करता है। इसके लिए राज्य सरकार, काननू, प्रभुसत्ता, राजनीतिक सिद्धांत एवं व्यवहार अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र है। समाजशास्त्र राजनीतिक और इससे संबंधित प्रश्नों पर समाज की एक उपप्रणाली के रूप में विचार करता है। समाजशास्त्र के अध्ययन में राजनीति पर स्वतंत्र रूप से नहीं बल्कि समाज के साथ इसके संबंध को ध्यान में रख कर विचार होता है।

समाज और राजनीति के पारस्परिक संबंधों पर गहराई से विचार करने के लिए समाजशास्त्र के अंतर्गत राजनीतिक समाजशास्त्र नामक एक अलग शाखा ही पिछले कुछ दशकों में विकसित हुई है।

उन्नीसवी सदी के आरंभिक समाजशास्त्रियों टॉकसिले 1835, कार्लमार्क्स 1846, आगस्त कोंत 1851-54, मार्गन 1877 तथा हरबर्ट स्पेंसर 1884 ने समाज और राजनीति के पारस्परिक संबंधों पर विचार किया है।

बीसवीं सदी में इस संबंध पर विशेष रूप से हॉबहाउस 1905, माहकेल 1915, परेटो 1916, मैक्स वेबर 1922, मेकाइवर 1926, मानहाइंम 1935, सी.राइट मिल्स 1948 तथा पारसंस 1969 ने प्रकाश डाला है।

अध्ययन की एक शाखा के रूप में राजनीतिक समाजशास्त्र के विकास में लिपसेंट 1959 और कोजर 1966 के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

6.1 सैद्धांतिक पृष्ठभूमि

उन्नीसवीं सदी के समाजशास्त्रियों के संमुख अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याएं थी। यूरोप की सामाजिक संरचना में तेजी से परिवर्तन हो रहा था। फ्रांस की राजक्रांति ,अमेरिका में उपनिवेशवादी शासन की समाप्ति, औद्योगिक क्रांति और लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था के अभ्युदय का यूरोप के चिंतन पर गहरा प्रभाव पड़ा। समाज और राजनीति के पारस्परिक संबंधों के अध्ययन की निम्नलिखित प्रवृत्तियां इस अवधि में दिखाई पड़ती हैं।

1. समाज और राज्य की विकासवादी व्याख्या
2. समाज और राज्य के पारस्परिक संबंध तथा इनमें प्राथमिकता की विवेचना
3. राजनीतिक प्रणालियों का विश्लेषण

इन प्रवृत्तियों का एक-एक विचार करना उचित होगा।

समाज एवं राज्य की विकासवादी व्याख्या कार्ल मार्क्स, अगस्त, कोंत, मार्गन और स्पेंसर की रचनाओं में दिखाई पड़ती है। इनके अनुसार :-

1. समाज के बढ़ते आकार, इसकी जटिलता और इसके नियंत्रण पद्धति में संबंध दिखाई पड़ते है।
2. आदिम समाजों के रीतिरिवाजों और नियंत्रण की सरल पद्धति से क्रमशः मध्ययुगीन तथा आधुनिक राज्यों का विकास हुआ है।
3. विकास की इस प्रक्रिया और बढ़ती भूक्षेत्रीय एकीकरण में संघर्ष और युद्ध की भूमिका महत्वपूर्ण रही है।

कोंत और स्पेंसर के अनुसार आदि समाजों के बीच चलने वाली पारस्परिक लड़ाई के कारण इनका धीरे-धीरे विस्तृत भूक्षेत्रीय समुदाय के रूप में संगठन

हुआ। इन्ही भूक्षेत्रों के आधार पर संगठित करने वाली शक्ति के रूप में राज्य का विकास हुआ। मार्गन और मार्क्स के अनुसार आर्थिक संरचना, वर्ग और वर्गो के बीच चलने वाले पारस्परिक संघर्ष के कारण राज्य की उत्पत्ति हुई। मार्क्स के अनुसार सामाजिक जीवन के प्रत्येक काल में शक्तिशाली वर्ग ने अपने आर्थिक स्वार्थो की पूर्ति के लिए राज्य की शक्ति का उपयोग किया। मध्ययुगीन सामंती व्यवस्था में राज्य भूस्वामियों और सामंतों को स्वार्थ रक्षा का हथियार था। पूंजीवादी व्यवसाय में यही पूंजीपतियों के हित की रक्षा करता है। साम्यवादी व्यवस्था में राज्य द्वारा सर्वहारा श्रमिक वर्ग के हितों का संरक्षण होगा।

इंग्लैण्ड में संसद की सर्वोपरिता, फ्रांस की राज्यक्रान्ति और सामाजिक संविदा के सिद्धांन्त के प्रतिपादन से पहले प्रायः सत्रहवी सदी तक यह धारणा थी कि राज्य और राजतंत्र दैवी विधान निर्मित है। राज्य एक सर्वोच्च शक्ति है। लेकिन ऊपर लिखी ऐतिहासिक घटनाओं के बाद लोकतांत्रिक राजव्यवस्था का अभ्युदय हुआ।

6.2 समाज तथा राज्य

उन्नीसवीं सदी में समाज एवं राज्य के पारस्परिक संबंध और इनमें प्राथमिकता के प्रश्न को लेकर तीन तरह की सैद्धांतिक प्रवृत्तियां स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

1. पहली सैद्धांतिक प्रवृत्ति राज्य को सर्वशक्तिशाली मानती है। इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व जर्मन दार्शनिक हीगेल करते हैं।
2. दूसरी सैद्धांतिक प्रवृत्ति के अनुसार समाज सर्वोपरि है। राज्य केवल उपादान है। समाज की प्रकृति द्वंद्वात्मक अथवा संघर्षपूर्ण है। सामाजिक जीवन में वर्गो के बीच आपसी संबंध दिखाई पड़ता है। राज्य शक्तिशाली वर्ग का हथियार मात्र है। इस विचारधारा के मुख्य प्रतिपादक कार्ल मार्क्स हैं।

3. तीसरी विचारधारा के अनुसार राज्य का काम सामाजिक जीवन में व्यवस्था स्थापित करना है। समाज में केवल संघर्ष नहीं बल्कि और सहमति दोनों बाते पाई जाती है। आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य सहमति पर आधारित है । इस मत का प्रतिपादन टाकविले ने किया है।

उन्नीसवीं सदी के समाजशास्त्रियों के सामने राजनीतिक प्रणालियों के प्रकार सीमित थे। अतः उन्होंने आदिम समाजों के सामाजिक नियंत्रण की पद्धति, कृषक व्यवस्था में राज्यों के विकास, रोम के नगर, राज्य, विभिन्न साम्राज्यों, मध्ययुगीन सामंती राजतंत्री प्रणाली और लोकतंत्र पर विचार किया है।

साम्यवादी और फासीवादी राजनीतिक प्रणालियों का विकास बीसवीं सदी में हुआ। अतः पहले के समाजशास्त्री इन पर विचार नहीं कर पाए हैं।

सामाजिक राजनीतिक विकास को ध्यान में रखते हुए बोटोमोर ने राजनीतिक प्रणालियों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है।

1. आदिम समाज स्पष्ट एवं स्थायी राजनीतिक संरचना का अभाव
2. नातेदारी और धर्म से प्रभावित स्पष्ट तथा स्थायी राजनीतिक प्रणाली का विकास इसके भी भाग है जैसे :

   क. नगर राज्य

   ख. नगर राज्यों पर आधारित साम्राज्य

   ग. सामंती राज्य

   घ. केंद्रीकृत अधिकारीतंत्र पर आधारित एशिया के राज्य

   ड. राष्ट्र राज्य
3. आधुनिक लोकतांत्रिक राज्य
4. आधुनिक अधिनायकवादी राज्य
5. राष्ट्रो राज्यों पर आधारित साम्राज्य

उपरोक्त वर्गीकरण राजनीतिक प्रणालियों के विकास को स्पष्ट करता है। राज्य भी एक तरह का सामाजिक समूह है। इसमें सामाजिक नियंत्रण की द्वितीयक प्रणाली पाई जाती है। राज्य के लिए भूक्षेत्र, जनता, सरकार और सार्वभौमिकता का होना अनिवार्य है।

राज्य अपने प्रकार्यो को सरकार द्वारा पूरा करता है। सरकार का अर्थ अथवा राज्याध्यक्ष, संविधान, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, पुलिस, सेना, दण्ड, कानून पताका तथा वर्दी के मिले-जुले स्वरूप से हैं।

राजनीतिक प्रणाली की दृष्टि से एक बात ध्यान रखने योग्य है कि इंग्लैण्ड, हॉलैण्ड और जापान में लोकतांत्रिक व्यवस्था के बावजूद राजतंत्रीय प्रणाली जीवित है। नेपाल और भूटान ऐसे राज्य हैं जहां चुनावों के बाद भी प्रभुसत्ता राजा में केन्द्रित है। कुछ ऐसे भी राज्य है जहां चुनाव तो होता है लेकिन वास्तविक सत्ता सेनाध्यक्ष के हाथ में होती है जो तानाशाह की तरह शासन करता है। अभी हाल तक पाकिस्तान में इसी प्रकार का शासन था और बाग्लादेश में अभी भी इस प्रकार का शासन है।

6.3 सामाजिक आर्थिक विकास और राज्य

समाज आर्थिक संस्थाओं, राज्य, राज्य के विकास में पारस्परिक संबंध है। आखेट, खाद्य संकलन और आरंभिक कृषि वाले आदिम समाज, परिवार, नातेदारी तथा ग्राम्य समुदायों के द्वारा संगठित थे। इन संगठनों के सरदार अथवा मुखिया होते थे। जनरीतियों के द्वारा इनका नियंत्रण होता था। इनकी सदस्यता और भूक्षेत्र सीमित थे। इनमें नियंत्रण तथा व्यवस्था की अवधारणा या तो बिल्कुल नहीं थी और अगर थी भी तो अत्यन्त आरंभिक अवस्था में।

कृषक समाजों में क्षेत्रीय एकीकरण के साथ समुदाय का आकार विस्तृत हुआ। गांव के स्थान पर कई गांवों के समूह एक भूक्षेत्र के अंतर्गत आए। नियंत्रण की

समस्या भी जटिल हुई और इस तरह मुखिया और सरदारों के स्थान पर राजतंत्र का विकास हुआ। परिवार और नोतेदारी के स्थान पर भूक्षेत्रीय संबंध हुए। कृषि व्यवस्था में अतिरिक्त उत्पादन, वाणिज्य के क्षेत्र और मात्रा में वृद्धि यातायात के विकास मुख्य रूप से हाथियों तथा घोड़ो के पालने और प्रशिक्षण की विधि के विकास तथा रथों के अविष्कार के बाद जो साम्राज्य, यूरोप में रोमन साम्राज्य और चीन के आरंभिक साम्राज्य इस तरह के विशाल राज्यों के उदाहरण हैं। मध्य युग में राजनीतिक सत्ता और नियंत्रण की प्रणाली का स्वरूप सामंतवादी अथवा राजतंत्रात्क था।

औद्योगिक सामाजिक व्यवस्था के विकास के साथ स्वतंत्रता समता तथा व्यक्तिवादी की विचारधाराएं उभरी। इन विचारधाराओं के कारण लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली का विकास हुआ। इस तरह राज्य ऐतिहासिक और सामाजिक शक्तियों से उत्पादित संरचना है। आधुनिक राज्य और सरकार के विकास के कालक्रम इस प्रकार हैं।

1. आदिम सामाजिक व्यवस्था में संबंध परिवार नातेदारी और गांवों तक सीमित थे। इस व्यवस्था में नियंत्रण तथा नियमन का कार्य शारीरिक शक्ति साहस और बुद्धि वाले व्यक्तियों जैसे परिवार नातेदारी समूहों तथा गांवों के मुखिया अथवा सरदार के हाथ में था। कुछ आदिम समाजों में सामुदायिक पंचायतें भी थी।
2. कृषकव्यवस्था में भूक्षेत्रीय एकीकरण हुआ और राज्यों का आकार विस्तृत हुआ। इस स्तर पर राजाओं द्वारा शासित छोटे-छोटे राज्य बनें।
3. विकसित प्रणाली, अतिरिक्त उत्पादन वाणिज्य, धर्म के प्रसार, यातायात में सुधार के साथ विशाल साम्राज्यों की उत्पत्ति हुई।
4. संघर्ष और युद्ध के कारण विशाल साम्राज्यों का पतन हुआ और फिर इनके स्थान पर सांस्कृतिक समूहों के आधार पर मध्य युग में राज्य बनें। स्पेन, पुर्तगाल, इग्लैण्ड, फ्रांस आदि इसके उदारहण हैं।
5. औद्योगिक व्यवस्था और पूंजीवाद के विकास के साथ मध्ययुगीन राजतंत्रात्मक प्रणाली के स्थान पर आधुनिक लोकतांत्रिक प्रणाली के स्थान पर आधुनिक लोकतांत्रिक

राज्यों का निर्माण हुआ। इन राज्यों में व्यक्तिवादी विचारधारा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राज्य द्वारा कम से कम हस्तक्षेप के सिद्धान्त पर जोर दिया गया।

6. जिन राज्यों में औद्योगिक विकास के साथ पूंजीवादी व्यवस्था का जन्म हुआ, उन्होंने विकास के दूसरे हिस्सों, जहां आदिम सामुदायिक अथवा कृषि की व्यवस्था थी के ऊपर बाजार के लिए आधिपत्य किया। इस प्रक्रिया में पूंजीवादी साम्राज्यवादी राज्यों का विकास उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी में हुआ। इस प्रकार के साम्राज्य स्थापित करने वाले राज्यों में इग्लैण्ड, फ्रांस, हॉलैण्ड, बेल्जियम, स्पेन तथा पुर्तगाल प्रमुख थे।
7. पूंजीवादी साम्राज्यवादी राज्यों की आपसी होड के कारण प्रथम और द्वितीय विश्व युद्ध लड़े गये । प्रथम विश्व युद्ध की अवधि में रूस में सन् 1971 में समाजवादी राज्य और युद्ध के बाद इटली में सन् 1922 में फासिस्ट राज्य की स्थापना हुई, इसके नेता मुसोलिनी थे।
8. सन् 1945 में द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद युद्ध के कारण क्षत-विक्षत साम्राज्यवादी शक्तियां एशिया और अफ्रीका के देशों को स्वाधीनता मिली। इस तरह स्वाधीन राष्ट्रों का एक नया समूह उभरा। भारत, बर्मा, पाकिस्तान, श्रीलंका, जिम्बाबे, नाइजीरिया, अंगोला आदि ऐसे राज्यों के उदारहण हैं।

6.4 आधुनिक राज्यों की संरचना

आधुनिक राज्यों की संरचना के मूलभूत तत्व भूक्षेत्र, नागरिक, सरकार, प्रभुसत्ता और नागरिकों की राज्य के प्रति स्वाभाविक भक्ति भावना है। सरकार के निम्नलिखित तीन अंग होते हैं :-

1. व्यवस्थापिका, जो कानून बनाने का कार्य करती है।
2. कार्यपालिका, जो कानूनों को लागू करती है।

3. न्यायपालिका जो कानूनों की व्याख्या के आधार पर विवादों का निपटारा करती है।

आधुनिक युग में कानून का शासन है। जनजातीय एवं कृषक समाजों में जो काम जनरीतियां करती है आज उस काम को कानून करता है। इस तरह कानून भी आधुनिक राज्यों की संरचना का एक अनिवार्य तत्व है।

आधुनिक सरकारों का संचालन राजनेताओं और अधिकारियों के हाथ में होता है। राजनेताओं द्वारा निर्धारित नीतियों का क्रियान्वयन अधिकारी और कर्मचारी करते हैं। इस व्यवस्था को अधिकारी तंत्र कहते हैं। आज की राजनीति सत्ता के चतुर्दिक घूमती है। सरकार के पास शक्ति होती है। शक्ति और सत्ता के लिए लोकतांत्रिक राजनीतिक प्रणाली में सतत प्रतिस्पर्धा चलती रहती है।

इस तरह संक्षेप में आधुनिक राज्य की संरचना के निम्नलिखित तत्व हैं -

1. भूक्षेत्र, नागरिक, प्रभुसत्ता और राज्य के प्रति नागरिकों की भक्ति भावना
2. सरकार के विभिन्न अंगों में सत्ता के पार्थक्य की पद्धति।
3. कानून
4. अधिकारी तंत्र
5. प्राधिकार
6. सत्ता
7. शक्ति
8. नियम, प्रतिमान और कार्य प्रणाली

6.5 राजनीतिक प्रकार्य

यंग और मैक के अनुसार आधुनिक लोकतांत्रिक प्रणाली में सरकार के विभिन्न अंगों में सत्ता का पार्थक्य होता है। ये विभिन्न अंग अपने-अपने प्रकार्यो को पूरा करते है। इनके अनुसार निम्नलिखित तीन राजनीतिक प्रकार्य हैं :-

1. समाज के संचालन के लिए प्रतिमानों का संस्थाकरण अथवा कानूनों का निर्माण।

2. संस्थागत प्रतिमानों द्वारा सामाजिक संघर्षो का निपटारा।

3. राज्य के संचालन की योजना और संस्थागत प्रतिमानों का कार्यान्वयन।

प्रतिमानों के संस्थाकरण के लिए लोकतांत्रिक व्यवस्था में चुनी हुई व्यवस्थापिका होती है। संघर्षो के निपटारें के लिए न्यायपालिका होती है। प्रतिमानों और नीतियों के क्रियान्वयन के लिए कार्यकारिणी होती है।

राजनीति के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में निम्नलिखित अवधारणाओं का बार-बार प्रयोग होता है।

1. नेतृत्व

2. सत्ता

3. शक्ति

4. प्रभाव

राज्य और सरकार की कार्य प्रणाली तथा राजनीतिक संघर्ष की ये महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं।

6.6 नेतृत्व

नेतृत्व की समाजशास्त्रीय अवधारणा के विकास में मैक्स वेबर का योगदान है। वेबर के अनुसार नेतृत्व का अर्थ आदेश पालन की संभावना से है । इसके दो पक्ष हैं। पहले पक्ष में वे व्यक्ति अथवा समूह आते हैं जिनके पास आदेश देने का अधिकार होता है। दूसरे पक्ष में वे लोग सम्मिलित किए जा सकते हैं जो आदेशों का पालन करते हैं। वेबर के अनुसार अधिकांश आदेशों का पालन दो बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

1. स्वार्थपूर्ति की भावना के कारण

2. प्रथाओं के कारण

वेबर के अनुसार निपट स्वार्थ अथवा बिना किसी अभिव्यक्ति के अंध आज्ञापालन इन पर आधारित सत्ता संरचना टिकाऊ नहीं हो सकती है। वेबर का मत है कि तीन आधारों पर प्राधिकार वैध होता है। वे निम्नांकित हैं :-

1. कानून
2. परंपरा
3. करिशमा

इनके आधार पर मैक्स वेबर नेतृत्व को तीन श्रेणियों में विभाजित करते हैं । 1. कानूनी प्राधिकार 2. परंपरात्मक प्राधिकार 3. करिशमायुक्त प्राधिकार

कानूनी व्यवस्था पर आधारित प्राधिकार की नियुक्ति की औपचारिक कार्यप्रणाली होती है। इन अधिकारियों के अधिकार और कर्तव्य कानून द्वारा निर्धारित होते हैं। इस व्यवस्था में किसी व्यक्ति के स्थान पर निश्चित नियमों द्वारा परिभाषित पद की आज्ञा का पालन होता है किसी विश्वविद्यालय का उपकुलपति एक व्यक्ति होता है लेकिन जब तक वे अपने पद पर रहते है तभी तक उनके आदेशों का पालन होता है। इस व्यवस्था का वेबर के अनुसार सबसे अच्छा उदाहरण अधिकारी तंत्र हैं।

परंपरागत प्राधिकार सामाजिक व्यवस्था के प्रति पवित्रता के विश्वास पर आधारित होता है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था परंपरात्मक प्राधिकार का अच्छा उदाहरण है। संतान अपने पिता के प्रति सम्मान और आज्ञापालन की भावना परंपरागत प्राधिकार के कारण रखती है।

6.7 अन्तर-पीढ़ी संघर्ष : राजनीतिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में

किन्तु बदलते सामाजिक मूल्यों, बढ़ती स्वार्थपरता सम्मान देने की परम्परा से आ रहे बदलाव सत्तात्मक पक्ष में परिलक्षित हो रहे हैं। यद्यपि वृद्धों के प्रति दायित्वों की स्वीकृति एवं उनके सम्मान के परम्परागत पारिवारिक मूल्य अभी भी कुछ न कुछ मात्रा में विद्यमान है किन्तु बदल रहे सामाजिक आर्थिक परिवेश में नयी समस्याएं उठ रही हैं। गांवों में परम्परागत जमींदार परिवारों के वृद्ध व्यक्ति इस अनुभव से काल्पनिक रूप में संतुष्ट रहते है कि परिवार की सम्पत्ति में उनका भी अधिकार है। किन्तु शहरी परिवारों में अर्थ व्यवस्था में क्रियाशीलता समाप्त होने के कारण आर्थिक भूमिका व स्तर प्रायः खो सा जाता है। यदि उनके पास बचत राशि है तो वे श्रेष्ठता का भाव रखते हैं और राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं तथा किसी न किसी रूप में राजनैतिक दलों के सदस्य भी हो जाते हैं।

किन्तु अचानक दैनिक कार्यो से अलग होने और अपने पुत्रो और रिश्तेदारों पर आर्थिक रूप से आश्रित होने पर राजनैतिक गतिविधियों में क्रियाशील होने की इच्छा उनमें समाप्त सी हो जाती है।

तालिका संख्या 6.8

वृद्ध उत्तरदाताओं का राजनैतिक दलों से सम्बन्ध

क्रं.	आयू समूह (वर्षो में)	वृद्ध उत्तरदाताओं का राजनैतिक दलों से सम्बन्ध			
		हाँ		नहीं	
		संख्या	%	संख्या	%
1	**30-49**	25	12.5	20	10.00
2	**50-69**	47	23.5	50	25.00
3	**70 से ऊपर**	21	10.5	37	18.5
	योग	**93**	**46.5**	**107**	**53.5**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के अनुसार

तालिका संख्या 6.8 में वृद्ध उत्तरदाताओं द्वारा राजनैतिक दलों से सम्बन्ध रखने की स्थिति का उल्लेख किया गया है । अध्ययन क्षेत्र के 200 उत्तरदाताओं में से 93 वृद्ध उत्तरदाता ऐसे हैं जो राजनैतिक दलों से सम्बन्ध रखते हैं ऐसे उत्तरदाताओं का प्रतिशतांक 46.5 है जबकि 53.5 प्रतिशत उत्तरदाताओं का किसी भी राजनैतिक दल से किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध नहीं है। क्षेत्र के आयु समूह 50-69 वर्ष के 23.5 प्रतिशत उत्तरदाता किसी न किसी राजनैतिक दल से सम्बन्ध रखते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। 70 वर्ष से ऊपर आयु समूह के 18.5 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी राजनैतिक दल से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। 30-49 आयु समूह के 12.5 प्रतिशत उत्तरदाता राजनैतिक दलों से सम्बन्ध रखते हैं। 70 वर्ष से अधिक उम्र के 10.5 प्रतिशत उत्तरदाता ही राजनैतिक दल से सम्बन्ध रखते हैं। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि आयु वृद्धि राजनैतिक दलों से सम्बन्ध के सापेक्ष होती है।

तालिका संख्या 6.9

युवाओं का राजनैतिक दलों से सम्बन्ध

क्रं.	आयू समूह (वर्षो में)	राजनैतिक दलों से सम्बन्ध			
		हाँ		नहीं	
		संख्या	%	संख्या	%
1	**15-19**	35	17.5	15	7.5
2	**20-24**	35	17.5	40	20.0
3	**25-29**	42	21.0	33	16.5
	योग	**112**	**56.0**	**88**	**44.0**

स्रोत - क्षेत्रीय सर्वेक्षण के अनुसार

युवाओं का राजनैतिक दलों से सम्बन्ध को तालिका संख्या 6.9 में दर्शाया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 56.0 प्रतिशत युवा उत्तरदाता किसी न किसी राजनैतिक दल से सम्बन्ध रखते हैं जबकि 44.0 प्रतिशत उत्तरदाता किसी भी राजनैतिक दल से सम्बन्ध नहीं रखते । जैसे-जैसे युवाओं की उम्र में वृद्धि होती जाती है वे राजनैतिक दलों में रूचि रखने लगते हैं। आयु समूह 30-49 तक आते ही राजनैतिक दलों के प्रति लोगों में अरूचि पैदा होने लगती है। आयु समूह 25-29 वर्ष के लोगों का 21.0 प्रतिशत उत्तरदाता राजनैतिक दलों से सम्बन्ध रखते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है । आयु समूह 20-24 वर्ष के 20.0 प्रतिशत युवाओं की रूचि राजनैतिक दलों के प्रति नहीं होती है। आयु समूह 15-19 वर्ष के 7.5 प्रतिशत युवा राजनैतिक दलों से सम्बन्ध रखते हैं।

तालिका संख्या 6.10

वृद्ध उत्तरदाताओं की राजनीतिक गतिविधियां

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	वृद्ध उत्तरदाताओं की राजनीतिक गतिविधियां					
		हाँ		नहीं		कभी-कभी	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	**30-49**	15	16.12	05	5.3	05	5.3
2	**50-69**	20	21.5	17	18.2	10	10.7
3	**70 से ऊपर**	09	9.6	12	12.9	00	0.00
	योग	**44**	**47.31**	**34**	**36.55**	**15**	**16.12**

स्रोत - सर्वेक्षण के अनुसार

तालिका संख्या 6.10 में वृद्ध उत्तरदाताओं की राजनीतिक गतिविधियों के सम्बन्ध में उनके विचारों को शोधार्थिनी द्वारा स्पष्ट किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 200 वृद्ध व्यक्तियों में से 93 व्यक्तियों ने राजनीतिक गतिविधियों के सम्बन्ध में अपने मत स्पष्ट किये हैं । क्षेत्र के 47.31 प्रतिशत वृद्ध उत्तरदाता राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। 36.55 प्रतिशत उत्तरदाता सदस्य तो हैं किन्तु राजनीतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेते हैं। 16.12 प्रतिशत वृद्ध उत्तरदाता कभी-कभी राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। 70 वर्ष से ऊपर आयु समूह के 9.6 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं।

तालिका संख्या 6.11

युवा उत्तरदाताओं की राजनीतिक गतिविधियां

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	युवा उत्तरदाताओं की राजनीतिक गतिविधियां					
		हाँ		नहीं		कभी–कभी	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	**15-19**	30	26.7	02	1.7	03	2.6
2	**20-24**	25	22.3	03	2.6	07	6.2
3	**25-29**	36	32.1	02	1.7	04	3.5
	योग	**91**	**81.25**	**07**	**6.25**	**14**	**12.50**

स्रोत – सर्वेक्षण के अनुसार

तालिका संख्या 6.11 में युवा उत्तरदाताओं की राजनीतिक गतिविधियों को दर्शाया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 200 में से 112 युवा उत्तरदाता राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं । 81.25 प्रतिशत राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं । 12.50 प्रतिशत युवा उत्तरदाता कभी–2 राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। 6.25 प्रतिशत युवा राजनीतिक दलों से तो सम्बद्ध हैं किन्तु किसी तरह की राजनीतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेते हैं। युवा वर्ग की आयु समूह में ज्यों-ज्यों वृद्धि होती जाती। राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने के प्रतिशतांक में वृद्धि होती जाती है। आयु समूह 25-29 वर्ष के 32.1 प्रतिशत युवा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं यह प्रतिशतांक युवा वर्ग के राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का सर्वाधिक है। आयु समूह 15-19 वर्ष के 26.7 प्रतिशत युवा राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। यह प्रतिशत सबसे कम है।

तालिकाओं के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि वृद्ध व्यक्तियों की तुलना में युवा वर्ग राजनीतिक गतिविधियों में अधिक सक्रिय रहते हैं। युवा वर्ग के सदस्यों में राजनीतिक अभिरूचि अधिक रहती है। वृद्ध वर्ग के सदस्य अपने अनुभवों के आधार पर नयी पनप रही राजनीतिक संस्कृति के पक्षधर नहीं है।

तालिका संख्या 6.12

वृद्ध व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित युवाओं को सलाह देने की स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	सलाह देने की स्थिति					
		हाँ		नहीं		कभी-कभी	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	**30-49**	40	20.0	02	1.0	03	1.5
2	**50-69**	57	28.5	20	10.0	20	10.0
3	**70 से ऊपर**	38	19.0	12	6.0	08	4.0
	योग	**135**	**67.5**	**34**	**17.0**	**31**	**15.5**

स्रोत - सर्वेक्षण के अनुसार

वृद्ध वर्ग के सदस्य अपने जीवनकाल के अनुभवों के आधार पर नवीन पीढ़ी को राजनीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित यथोचित सलाह देते रहते हैं। तालिका संख्या 6.12 में वृद्ध व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित युवाओं को सलाह देने की स्थिति का उल्लेख किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 67.5 प्रतिशत वृद्ध अपने परिवार के युवाओं को समय-समय पर सलाह देते रहते हैं। 15.5 प्रतिशत वृद्ध अपने परिवार के युवा सदस्यों को कभी-कभी सलाह देते हैं। आयु समूह 50-69 वर्ष के 28.5 प्रतिशत वृद्ध युवाओं को राजनीतिक सलाह देते हैं, यह प्रतिशत सर्वाधिक है। आयु समूह 70 वर्ष से अधिक के 19.0 प्रतिशत वृद्ध युवाओं का राजनीतिक सलाह देते हैं। यह प्रतिशतांक सबसे कम है।

वृद्धजन अपने जीवनकाल के अच्छे बुरे अनुभवों के आधार पर युवा सदस्यों को राजनीतिक गतिविधियों में किस रूप में भाग लेना चाहिए की सलाह देते हैं जिससे युवा राजनीतिक पथ में भटक न जाएं।

तालिका संख्या 6.13

राजनीतिक क्षेत्र में युवाओं द्वारा वृद्धों की सलाह मानने की स्थिति

क्रं.	आयु समूह (वर्षो में)	सलाह मानने की स्थिति					
		हाँ		नहीं		कभी-कभी	
		संख्या	%	संख्या	%	संख्या	%
1	15-19	12	6.0	28	14.0	10	5.0
2	20-24	25	12.5	42	21.0	08	4.0
3	25-29	20	10.0	35	17.0	20	10.0
	योग	**57**	**28.5**	**105**	**50.5**	**38**	**19.0**

स्रोत - सर्वेक्षण के अनुसार

तालिका संख्या 6.13 में राजनीतिक क्षेत्र में युवाओं द्वारा वृद्धों को दी गयी सलाह को मानने या स्वीकारने की स्थिति का उल्लेख किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 50.5 प्रतिशत युवा, वृद्धों द्वारा दी गयी सलाह को नहीं मानते । 19.0 प्रतिशत युवा कभी-कभी वृद्धों द्वारा दी गयी सलाह के अनुसार राजनीतिक क्रिया कलाप सम्पादित करते हैं। 28.5 प्रतिशत युवा, वृद्धों द्वारा दी गयी सलाह के अनुसार राजनीतिक कार्यो को सम्पादित करते हैं। आयु समूह 20-24 वर्ष के 21.0 प्रतिशत युवा वृद्धों द्वारा दी गयी राजनीतिक सलाह को स्वीकार नहीं करते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। आयु समूह 15-19 वर्ष के 5.0 प्रतिशत युवा वृद्धों की सलाह के अनुसार कार्यो का सम्पादन करते हैं।

प्रायः युवाओं द्वारा वृद्धों द्वारा दी गयी राजनीतिक सलाह को मजाक में उड़ा देते हैं तथा उनकी सलाह को कोई महत्व नहीं देते उनके विचार में वृद्धों द्वारा दी गयी सलाह दकियानूसी विचारों का पुलिन्दा है। यह स्थिति किसी भी प्रकार के सम्पादित होने वाले चुनावों के समय दिखाई देती है।

वर्तमान में एक ही परिवार के सदस्यों का मत विभाजन इस तथ्य को प्रमाणित करता है । यदि पूर्व में दृष्टि डालें तो ऐसा नहीं होता था। एक परिवार के सभी

मतदाताओं द्वारा किसी एक ही पक्ष में मतदान किया जाता था और एक ही राजनीतिक दल की विचारधारा से सहमत होते थे, किन्तु आज एक ही परिवार में अलग-अलग राजनीतिक विचारधारा के लोग दिखाई देते हैं।

*****

अध्याय–7

निष्कर्ष

- निष्कर्ष
- सुझाव

7. निष्कर्ष

नयी या युवा पीढ़ी और पुरानी या वृद्ध पीढ़ी के बीच पाया जाने वाला भेद अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के लिए काफी सीमा तक उत्तरदायी है। पुरानी और नवीन पीढ़ी के मूल्यों, विश्वासों, अभिवृत्तियों और व्यवहार- प्रतिमानों में काफी अन्तर पाया जाता है। इसका मूल कारण था पीढ़ियों में समय का अन्तर है। पुरानी पीढ़ी के लोगों का समाजीकरण और उनके व्यक्तित्व का विकास स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व जिस पर्यावरण में हुआ, आज वह काफी कुछ बदल चुका है। वर्तमान में सामाजिक परिवर्तन की गति काफी तीव्र है। आज सामाजिक संरचना में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखायी पड़ते हैं। अब प्रदत्त के बजाय अर्जित परिस्थितियों का महत्व बढ़ता जा रहा है। आज का नवयुवक अपने प्रत्यनों से आगे बढ़ना चाहता है, कुछ स्वतन्त्रता चाहता है, अपने लिए स्वयं कुछ निर्णय लेना चाहता है। वह पुरानी पीढ़ी की तुलना में उदार और मानवतावादी दृष्टिकोण से सोचने लगा है। आधुनिक शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति ने उसके जीवन मूल्यों को बहुत कुछ प्रभावित किया है। औद्योगीकरण और नगरीयकरण की प्रक्रियाओं ने भी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र और सामाजिक दृष्टि से उदार बनाया है। सह-शिक्षा तथा स्त्री-पुरूषों के विविध क्षेत्रों में साथ-साथ काम करने से रोमांस पर आधारित प्रेम विवाहों का महत्व बढ़ा है। पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी ही जाति में विवाह करते थे। उनका विवाह उनके माता-पिता एवं नातेदारों द्वारा तय होता था, किन्तु नयी पीढ़ी का युवक जाति-पांति के बन्धनों की चिन्ता नहीं करते हुए मनचाही लड़की से विवाह करना चाहता है। जहां परिवार, जाति और समाज के लोग इसमें बाधक बनते हैं, वहां संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। पुरानी पीढ़ी के लोग अपनी पुरानी मान्यताओं के अनुसार अपनी सन्तानों को व्यवहार करते देखना चाहती है जबकि नवीन पीढ़ी के युवक अपने स्वयं के मूल्यों, अभिवृत्तियों एवं विश्वासों के आधार पर कार्य करना चाहते हैं। आज की वधू पुरानी पीढ़ी की वधू के जैसे घूंघट नहीं निकलना चाहती, पति के साथ इधर-उधर सैर-सपाटे पर जाना चाहती है, नौकरी करना चाहती है,

अपने बालकों को अपनी इच्छानुसार शिक्षा दिलाना चाहती है। सास-ससुर और परिवार के अन्य वृद्ध सदस्यों को यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता। वे इन बातों का विरोध करते हैं। परिणामस्वरूप पुरानी और नवीन पीढ़ी में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है।

डा0 दामले का विचार है कि नवीन पीढ़ियां स्वयं उठना चाहती है और अपना पृथक अस्तित्व या व्यक्तित्व बनाना चाहती है, परन्तु समाज की विविध धार्मिक असहिष्णुता ने भी हिन्दू-मुसलमानों में संघर्ष को जन्म दिया। अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए "फूट डालो और राज करो" की नीति अपनाई जिसके कारण हिन्दू और मुसलमान आपस में लड़ते रहे। आज भी विभिन्न धर्म के लोग राष्ट्रीय हितों को तिलांजलि देकर अपने धर्मावलम्बियों के अतिरिक्त अन्य लोगों के प्रति घृणा, संदहे और दुराग्रह के भाव रखते हैं जिसके फलस्वरूप धार्मिक संघर्ष पैदा हुआ।

भारत में धार्मिक संघर्ष हिन्दू एवं मुसलमानों में ही नहीं वरन् अन्य धर्मावलम्बियों, जैसे निरंकारियों एवं अकालियों, शिया एवं सुन्नियों, हिन्दू, जैनियों, बौद्धों और ईसाइयों में भी हुए हैं किन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।

युवा पीढ़ी तथा माता-पिता, शिक्षक आदि की बड़ी पीढ़ी में अन्तर तथा संघर्ष के कारण युवा असन्तोष पैदा होता है। इन दोनों पीढ़ियों के लक्ष्य, मूल्य, आदर्श, सोच आदि में बड़ा अन्तर तथा भिन्नता होती है।

शिक्षा का विस्तार, यातायात और संचार के साधनों में उन्नति, युवा संगठन आदि के कारण अब युवा वर्ग केवल अपने अधिकारों के सम्बन्ध में ही नहीं अपितु अपने चारों ओर की परिस्थितियों विशेषकर शिक्षा सम्बन्धी आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों व समस्याओं के सम्बन्ध में वह उत्तरोत्तर, सचेत होता जा रहा है। सम्भवताः ही उसे अपने लिए कुछ चीजों या अवस्थाओं की जरूरत होती है और जब वर्तमान परिस्थितियों में वह चीज उसे यूँ ही प्राप्त नहीं होती है तो उसे बाध्य होकर उन्हें प्राप्त करने के लिए युवा वर्ग को क्रियात्मक कदम उठाना या आन्दोलन करना पड़ता है चाहे वह क्रियात्मक कदम राजनीतिक नेताओं या कुलपति का घेराव करना हो अथव जलूस और

नारेबाजी हो अथवा हड़ताल और हत्याएं हों। वास्तव में युवा क्रियावाद वह आन्दोलनात्मक विचारधारा व कर्म पद्धति है जो युवा वर्ग में वर्तमान परिस्थितियों के प्रति असन्तोष, अपने भविष्य के सम्बन्ध में घोर निराशा और कुछ सीमा तक राजनीतिक पार्टियो द्वारा उन्हें गुमराह कर देने के फलस्वरूप पनपता है और जो अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अहिंसात्मक एवं हिंसात्मक दोनों ही तरीकों को अपनाते हैं। इसी से युवा क्रिया व वाद या छात्र अशान्ति व हिंसा की प्रकृति स्पष्ट है।

भारत में विगत पांच दशकों में बुजुर्गो को निरन्तर हाशिए पर धकेलने का काम परिलक्षित हुआ है। वर्तमान में वृद्धों एवं युवा पीढ़ी के बीच संवादहीनता की खाई इतनी गहरी हो गई है कि वृद्धों को अनावश्यक तनाव के दंश को सहना पड़ता है।

समृद्धि की आधुनिक परिभाषा से नैतिक, सैद्धान्तिक वैचारिक और मूल्यगत समृद्धि की अवधारणाएं तेजी से नष्ट होती जा रही हैं। मानव की समृद्धि का एक ही अर्थ रह गया है - भौतिक सम्पन्नता । बुजुर्गो के अनुभव "स्क्रैप" कहकर खारिज किया जा रहा है। वे आउटडेटेड और ओल्ड फैशंड जैसे सम्बोधनों से सम्बोधित किये जा रहे है। समाज में नयी सोंच को अवलोकित करने से प्रतीत होता है कि वृद्धावस्था मानों जीवन का अंग ही नहीं है । उसे तो सुख-मृत्यु के हाथों दे देना चाहिए।

पारिवारिक संबंधो के खास ताने-बाने से संरचित भारतीय समाज में भी उपेक्षित स्थिति निर्मित हो रही है।

मनुष्य पहले जीवित रहेगा, फिर कहीं इतिहास का निर्माण कर सकेगा और जीवित रहने के लिए भोजन,कपड़ा व मकान आदि आधारभूत चीजों का उत्पादन आवश्यक है। साथ ही, मनुष्य चूँकि मरणशील है, इसलिए मरने वाले सदस्यों का स्थान लेने के लिए बच्चों का उत्पादन भी आवश्यक है ताकि समाज की निरन्तरता बनी रहे। पर यदि बच्चों के उत्पादन का यह सिलसिला बिना समझे-बूझे और बिना रोक-टोक के मनमाने ढंग से चलता रहता है तो जनसंख्या का विस्फोट होता है और बच्चे परिवार के स्नेहजन न रहकर बोझ बन जाते हैं क्योंकि उस अवस्था में जीवित रहने के साधनों के उत्पादन और

बच्चों के उत्पादन में सन्तुलन कायम नहीं रह पाता है। इसीलिए परिवार-कल्याण की कल्पना की गई है और 'हम दो हमारे दो' का नारा लगाया जाता है और उपदेश दिया जाता है कि 'दो बच्चों का लक्ष्य महान, लड़का-लड़की एक समान'। कुछ भी हो हम सभी का लक्ष्य एक है - एक सन्तुलित परिवार और सबके लिए सुख-सुविधाएँ।

सन् 2001 की जनगणना के अन्तरिम आंकड़ों के अनुसार 01 मार्च 2001 की आधी रात में भारत की जनसंख्या 1,02,70,15,247 हो गई है। इसमें पुरूषों की संख्या 53,12,77,078 और महिलाओं की संख्या 49,57,38,169 है। पिछले दस साल में भारत की आबादी में 18.10 करोड की बढ़ोत्तरी हुई है। यह जनसंख्या के आधार पर दुनिया के पांचवे बड़े देश ब्राजील की जनसंख्या के बराबर है। इस जनगणना में पुरूषों के मुकाबले महिलों की संख्या 927 के स्थान पर बढ़कर 933 हो गई हैं। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या प्रक्षेपण के अनुसार सन् 2050 तक भारत की जनसंख्या चीन की 1.5 अरब के मुकाबले 1.6 अरब हो जाएगी और विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला देश हो जाएगा। उसी प्रकार उत्तर प्रदेश में अगर मौजूदा रफ्तार से आबदी बढ़ी रही तो 30 साल में प्रदेश की आबादी दो गुनी हो जाएगी। जो इस समय 16,60,52,859 है।

आयु समूह 15-19 वर्ष के उत्तरदाताओं का प्रतिशत सबसे कम है। इस आयु समूह के अधिकांश युवा अपने माता-पिता अथवा संरक्षकों पर आश्रित होते हैं अर्थात् अपने परिवार के बड़े बुजुर्गो पर उनकी निर्भरता अधिक होती है।

आयु समूह 15-19 वर्ष के 17.5 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित हैं। यह प्रतिशत सर्वाधिक है। सबसे कम 2.5 प्रतिशत उत्तरदाता आयु समूह 25-29 वर्ष के हैं जो अविवाहित है। 20-24 वर्ष के 5.0 प्रतिशत उत्तरदाता अविवाहित है। आयु समूह 25-29 वर्ष के 32.5 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित हैं। यह प्रतिशत सर्वाधिक है। 15-19 वर्ष आयु समूह के 7.5 प्रतिशत उत्तरदाता विवाहित है। विधुर उत्तरदाताओं का प्रतिशत 2.5 है। यह प्रतिशत आयु समूह 20-24 तथा 25-29 वर्ष के उत्तरदाताओं से सम्बन्धित है। चयनित युवा उत्तरदाताओं में तलाक शुदा उत्तरदाताओं की संख्या शून्य है।

आयु समूह 15-19 वर्ष के युवा उत्तरदाताओं का प्रतिशत कम होने का कारण यह है कि अब बदलती परिस्थितियों में नगरीय समाजों के साथ ही ग्रामीण समाजों में भी शीघ्र या कम आयु में विवाह करने की प्रवृत्ति में ह्रास हो रहा है। 25-29 वर्ष आयु समूह के विवाहित युवाओं की संख्या चयनित उत्तरदाताओं में सर्वाधिक 65 (32.5) है। क्योंकि इस आयु समूह तक आते-आते युवाओं की भविष्य की अपनी दिशा निश्चित हो जाती है। इस आयु समूह से अधिक उम्र में विवाह करना बुन्देलखण्ड के जनमानस में उचित नहीं माना जाता है।

विधुर युवाओं का जो प्रतिशत आयु समूह 20-24 और 25-29 वर्ष का पाया गया उसमें अधिकांश की पत्नियां या तो किसी बीमारी के कारण मृत्यु का शिकार हो गयी या फिर कुण्ठावश आत्महत्या कर ली। साक्षात्कार के दौरान शोधार्थिनी ने पाया कि एक युवा की पत्नी ने सिर्फ इस कारण से आत्महत्या कर ली क्योंकि उसका पति अपने माता-पिता से अलग होकर एकाकी परिवार नहीं बसाना चाहता था। जबकि अध्ययन क्षेत्र के तीन युवाओं की पत्नियों की मृत्यु प्रथम प्रसव के दौरान हुई क्योंकि उन्हें समायानुसार चिकित्सीय सुविधाएं प्राप्त नहीं हो सकी। एक युवा की पत्नी ने केवल इस कारण अपनी जीवन लीला समाप्त कर ली क्योंकि उसे अपनी ससुराल की महिलाओं द्वारा समय-समय पर दहेज न लाने के लिए प्रताडित किया जाता था। शोधार्थिनी ने उक्त तथ्यों की पुष्टि अध्ययन पद्धति की उपलब्ध समुचित प्रविधियों द्वारा अध्ययन के दौरान की ।

अध्ययन क्षेत्रों के चयनित वृद्ध उत्तरदाताओं में से 50.5 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त परिवार में निवास करते हैं जबकि 49.5 प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी परिवार में निवास करते हैं। आयु समूह 50-69 वर्ष के 21.5 प्रतिशत वृद्ध संयुक्त परिवारों में निवास करते हैं। यह प्रतिशत सर्वाधिक है। संयुक्त परिवार में निवास करने वाले वृद्धों के समूह का यह प्रतिशत सर्वाधिक है जबकि इसी आयु समूह के 27.0 प्रतिशत वृद्ध एकाकारी परिवार में निवास करते हैं। आयु समूह 30-49 वर्ष के लोग जो संयुक्त परिवारों में निवास

करते हैं उनका प्रतिशत 18.0 है । आयु समूह 30-49 वर्ष के 4.5 प्रतिशत वृद्ध एकाकी परिवारों में निवास करते हैं।

जो उत्तरदाता बेरोजगार हैं उनमें अधिकांश शारीरिक रूप से कमजोर हो चुके हैं या फिर किसी न किसी बीमारी से ग्रस्त हैं जो वृद्ध व्यापार या कृषि कार्यो में संलग्न हैं उनमें उनके परिवार के सदस्यों की भी सहभागिता रहती है। जैसे-जैसे उम्र में वृद्धि होती जाती है कार्य करने की क्षमता में ह्रास होता जाता है फिर भी वृद्ध में कार्य के प्रति रूचि दिखाई देती है किन्तु वे अपने परम्परागत रूप में ही कार्य करने में रूचि रखते हैं। नवीनता को स्वीकार करने में उनकी अरूचि दिखाई देती है।

वृद्ध व्यक्तियों द्वारा युवाओं को उनके विभिन्न कार्यो में सलाह देने की स्थिति का उल्लेख तालिका संख्या 4.20 में किया गया है। अध्ययन क्षेत्र के 55.0 प्रतिशत वृद्ध युवाओं को उनके द्वारा सम्पादित किए जाने वाले विभिन्न कार्यो के लिए यथोचित सलाह देते हैं। 18.5 प्रतिशत वृद्ध ऐसे हैं जो अपने पारिवारिक युवाओं को किसी प्रकार की सलाह नहीं देते हैं। 26.5 प्रतिशत वृद्ध अपने परिवार के युवाओं को कभी-कभी सलाह देते हैं। आयु समूह 50-69 वर्ष के 27.5 प्रतिशत वृद्ध युवाओं को सलाह देते हैं । इसी आयु समूह के 15.0 प्रतिशत वृद्ध कभी-कभी सलाह देते हैं।

अध्ययन क्षेत्र के 35.5 प्रतिशत युवा ऐसे हैं जो कभी पूजा पाठ नहीं करते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। 33.5 प्रतिशत युवा प्रतिदिन पूजा पाठ करते हैं। 31.0 प्रतिशत युवा कभी-कभी पूजा पाठ करते हैं। आयु समूह 25-29 वर्ष के 17.0 प्रतिशत युवा प्रतिदिन पूजा पाठ करते हैं। यह प्रतिशतांक सर्वाधिक है। पूजा-पाठ न करने वाले युवाओं का सर्वाधिक प्रतिशतांक 15.0 आयु समूह 15-19 वर्ष का है। आयु समूह 20-24 वर्ष के 15.0 प्रतिशत युवा कभी-कभी पूजा पाठ करते हैं।

अध्ययन क्षेत्र के 43.0 प्रतिशत युवा फिल्मी कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन का लाभ प्राप्त करते हैं। 26.0 प्रतिशत युवाओं ने स्वीकार किया कि वे राजनीतिक कार्यक्रमों के माध्यम से मनोरंजन करते हैं। 19.5 प्रतिशत युवा सामाजिक कार्यक्रमों को

देखना व सुनना पसन्द करते हैं। धार्मिक कार्यक्रमों को पसन्द करने वाले युवाओं का प्रतिशंताक 11.5 है।

अध्ययन क्षेत्र के 200 वृद्ध व्यक्तियों में से 93 व्यक्तियों ने राजनीतिक गतिविधियों के सम्बन्ध में अपने मत स्पष्ट किये हैं । क्षेत्र के 47.31 प्रतिशत वृद्ध उत्तरदाता राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। 36.55 प्रतिशत उत्तरदाता सदस्य तो हैं किन्तु राजनीतिक गतिविधियों में भाग नहीं लेते हैं। 16.12 प्रतिशत वृद्ध उत्तरदाता कभी-कभी राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं। 70 वर्ष से ऊपर आयु समूह के 9.6 प्रतिशत उत्तरदाता राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेते हैं।

वृद्धजन अपने जीवनकाल के अच्छे बुरे अनुभवों के आधार पर युवा सदस्यों को राजनीतिक गतिविधियों में किस रूप में भाग लेना चाहिए की सलाह देते हैं जिससे युवा राजनीतिक पथ में भटक न जाएं।

प्रायः युवाओं द्वारा वृद्धों द्वारा दी गयी राजनीतिक सलाह को मजाक में उड़ा देते हैं तथा उनकी सलाह को कोई महत्व नहीं देते उनके विचार में वृद्धों द्वारा दी गयी सलाह दकियानूसी विचारों का पुलिन्दा है। यह स्थिति किसी भी प्रकार के सम्पादित होने वाले चुनावों के समय दिखाई देती है।

वर्तमान में एक ही परिवार के सदस्यों का मत विभाजन इस तथ्य को प्रमाणित करता है । यदि पूर्व में दृष्टि डालें तो ऐसा नहीं होता था। एक परिवार के सभी मतदाताओं द्वारा किसी एक ही पक्ष में मतदान किया जाता था और एक ही राजनीतिक दल की विचारधारा से सहमत होते थे, किन्तु आज एक ही परिवार में अलग-अलग राजनीतिक विचारधारा के लोग दिखाई देते हैं।

निष्कर्ष

शोध अध्ययन हेतु जिन उपकल्पनाओं का निर्माण किया गया था, अध्ययन क्षेत्र के सर्वेक्षण के पश्चात् सारणीयन एवं विश्लेषण से जो तथ्य उभर कर आए उनसे उपकल्पनाओं का सत्यापन हो जाता है । अध्ययन से जो तथ्य प्राप्त हुए वे निम्नलिखित हैं :-

1. बदलते परिवेश में दो पीढ़ियों के मध्य जो मत भिन्नता दृष्टिगत होती है उसके पीछे वर्तमान सामाजिक संरचना के कारण प्रभावी है।
2. परिवार संस्था जो युगों से सामाजिक संरचना का आधार रही है। उसके आधारभूत उद्देश्यों में सिद्धान्तों में परिवर्तन अन्तर पीढी संघर्ष का एक कारण है। संयुक्त परिवार जो भारतीय सामाजिक संरचना की विशेषता रही है। वर्तमान में विघटित हो रही है उसके स्थान पर एकाकी और केन्द्रीय परिवारों की अवधारणा प्रबल हो रही है।
3. वर्तमान भारतीय सामाजिक मूल्यों एंव आदर्शो में तथा पुरातन में व्याप्त रहे सामामजिक मूल्यों एवं आदर्शो में पर्याप्त भिन्नताएं है, समूह के स्थान पर वैयक्तिक मूल्यों की प्रधानता बलवती हुई है जो अन्तर पीढ़ी संघर्ष का एक कारण है।
4. वैश्वीकरण की प्रक्रिया से पश्चिमीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव भारतीय सामाजिक व्यवस्था एवं संरचना पर पड़ा है। परिणामस्वरूप अन्तर पीढ़ी संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हुई है।
5. शिक्षा का उद्देश्य जहां बौद्धिक विकास करना रहा है किन्तु बदलते परिवेश में शिक्षा के उद्देश्यों में निरन्तर परिवर्तन होता जा रहा है। शिक्षा अब रोजगार का एक प्रमुख साधन है। मूल्यों की संरचना, आदर्शो की स्थापना अब शिक्षा के गौण उद्देश्य हो गये हैं। अन्तर पीढ़ी संघर्ष का यह एक प्रमुख कारण है।

6. नवीन और पुरातन पीढ़ी के मध्य अविश्वास की अवधारणा का जन्म हुआ है। कार्यों में हस्ताक्षेप तथा कार्य सम्पादन एवं उसकी सफलता के प्रति पुरातन पीढ़ी नवीन पीढ़ी पर विश्वास नहीं करती तथा शंका की दृष्टि से देखती है। नवीन पीढ़ी पुरातन पीढ़ी की इस शंका से कुण्ठित होती है। परिणामस्वरूप संघर्ष तथा मत भिन्नताएं उत्पन्न होती है।
7. नगरीकरण और औद्योगीकरण की प्रक्रिा से जहां व्यक्ति में भौतिकवादी प्रवृत्ति का जन्म हुआ है वहीं अपनी परम्परागत जीवनशैली और आदर्शो में व्यापक परिवर्तन के परिणामस्वरूप अन्तर-पीढ़ी संघर्ष बढ़ा है।
8. बदलते परिवेश में बढ़ रहे अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को परिवार, समाज, आर्थिक क्षेत्र , राजनीतिक क्षेत्र के साथ ही सांस्कृतिक एवं धार्मिक क्षेत्र में दिखाई देता है।

सुझाव

अन्तर-पीढ़ी संघर्ष की स्थिति भारतीय सामाजिक संरचना के दृढ़ आधार को प्रभावित करने में अहम भूमिका निभा रही है।

भारतीय सामाजिक एवं पारिवारिक संरचना दुनिया के अन्य समाजों में श्रेष्ठतम स्थान रखती है किन्तु बदलते परिवेश में बढ़ रहे अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के कारण आज भारतीय सामाजिक संरचना संक्रमण के दौर में है। शोधार्थिनी द्वारा शोध के दौरान पाए गए कारणों को जाना है यदि इन कारणों को रोका जाए तो अन्तर-पीढ़ी संघर्ष की स्थिति को समाप्त किया जा सकता है। शोधार्थिनी की दृष्टि में निम्नांकित सुझाव प्रस्तावित हैं

1. पुरातन एवं नवीन पीढ़ी के सदस्यों को चयनित कि वे एक-दूसरे की भावनाओं को समझे तथा तार्किक आधार पर मत भिन्नता की स्थिति को समाप्त करें।
2. भारतीय सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शो को बनाए रखने हेतु उनका व्यापक प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए।

3. बुजुर्ग हमारी विरासत है। आज हम जो भी हैं वे पूर्वजों के कारण हैं। हमें उनकी सलाह माननी चाहिए वे हमारे लिए सम्माननीय एवं आदरणीय है।
4. भारतीय शैक्षणिक संस्थाओं में भारतीय आदर्शो मूल्यों एवं सिद्धान्तों की व्यावहारिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. शासकीय स्तर पर अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को रोकने के लिए व्यापक कानून बनाकर उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

*****

संदर्भ-ग्रन्थ

सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची

Abelson, R.P.&Rosenberg, M.J.	1950 Symbolic Psychological a model of attitudinal cognition. Behavioral science.
Alloprt, Gorden, W.	1957 Personality New York Henry Holtna Company.
Anderaon, T.W.	1972 An Introduction to Miltiveriate statistical Analyeis. New Delhi, Wilay Dastern Pvt. Ltd
Bakker, C.B.and Dightman, C.R.	1964. Psychological factors in fertility control. Fertility and sterility
Blake, R.L. Insko, C.A. Cialdini, R.B. & Chaikan A.L.	1969, Belief and attitudes about contraception among the poor. Coroling Population Cerntre. Monograph series.
Cattell, R.B.	1950. Personality a systematic, Theoretical and Factual study. New York MC Graw Hill Book Company
Cattell, R.B.	1952. Factor Analys is, New York
Cattell, R.B.	1957. Personality and motivation structure and meqsurement. New York Harcourt, Brace and world.
Child O.	1975. Essentials of Factor Analysis. London. Holt. Rinechartad Wiston.
Cooley, W.W. and Hohnes, P.R.	1971. Multivariate Data Analysis New York, Hohn wiley and sons.

De Charms R. — 1968. Personal Causation the internal effective determinates of Behavior, New York Academic press.

Fox David J. — 1969. The Research process in Education, New York. Holt. Rinchart wand winaton.

Hall, C.S.and Lindzey, G. — 1957. Theories of Personality New York. John Wiley & Sons.

Hoffman L.W.and wyatt, F. — 1960. Social Change and Motivations for having larger families some theoretical considerations, Merrill Palmer Cuarterly 6, p.p. 235-244

Mac Donal Jr. A.P. — 1970 Internal External locus of control and the practice of birth control Psychological Reports.

Young, P.V. — 1977. The Scientific Social Surveya and Research. Printice Hall Publication, New Delhi etc.

Back, K.W; — 1976 Personal Characteristics and Social Behavior. New York.

Bhatia. H.S. — 1983. Aging and Society : A Sociological Study of the Retired Public Servants. Udaipur.

Bose A.B. & K.D. Gangrade. — 1988. Aging in India : New Delhi

Carol, H.Meyer, — 1975. Social Work with the Aging. New York.

Chandra Dave — Some Psycho-Social Aspects of Aging . Tirupati.

Desai K.C. — 1982. Aging in India. Bombay

Desai. K.C. & R.D. Naik, — 1970. Problems of the Retired People in Greater Bombay. Bombay

D' Souza V.S. — 1969. Changes in Social structure and changing Roles of other People in India. Washington.

Homban, David — 1978. Social Challenge of Aging. London.

Kilty, K.M. & A Feld, — 1976. Attitudes toward aging and the needs of other people, Journal of Gerontology.

Mahajan, A — 1987. Problems of the Aged in unorganized Sector. Delhi.

Nair, T.Krishnan — 1980. Other People in Rural Tamil Nadu, Madras.

Raghani, V. and N.K.Singhi — 1970. "A Survery of Problems of Retired Persons" Jaipur.

Raj, B and B.G. Prasad. — 1971. " A Study of Rural Aged Persons in Social Profile. Bombay.

Bamamurti. P.V. — Problems of Aging in Industry.

Sati, P.M. — 1988. Retired and Aging People. Delhi.

Sharma, M.L. & T.M. Dak, — 1987. Aging in India. Delhi,

कर्वे, इरावती — भारत में नातेदारी व्यवस्था

मुखर्जी, आर.एन. — सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी

अग्रवाल जी.के. — समाजशास्त्र (आगरा)

REPORTS

1. World Development Report Oxford University 1987.
2. Report of the Study team on over dues of cooperative credit sureties RBT 1974.

3.	उत्तर प्रदेश वार्षिकी	-	सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग उ.प्र.लखनऊ
	वर्ष 1993-94	-	पूर्वोक्त
	1994-95	-	
	1995-96	-	
	1996-97	-	
4.	सांख्यकीय पत्रिका	-	जनपद झांसी,अर्थ एवं संख्याधिकारी झांसी
	वर्ष 1994-95	-	
	1995-96	-	
	1996-97	-	
	2005-06	-	
5.	जनगणना पुस्तिका	-	खण्ड I.II.III. IV
	वर्ष 1971	-	
	1981	-	
	1991	-	
	2001	-	
	हमीरपुर का गजेटियर	-	भारत सरकार का गजेटियर उ.प्र.

पत्र-पत्रिकाएं

1.	योजना मासिक पत्रिका	-	योजना भवन संसद मार्ग नई दिल्ली
	वर्ष 1994	-	सभी अंक
	1995	-	
	1996	-	
	1997	-	
	1998	-	
	1999	-	
2.	समाज कल्याण मासिक पत्रिका	-	केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड नई दिल्ली
	वर्ष 1994	-	सभी अंक
	1995	-	
	1996	-	
	1997	-	
	1998	-	
	1999	-	
	2000	-	
	2001 से 2006 तक	-	
3.	इण्डिया ट्रेड साप्ताहिक पत्रिका	-	लिविंग मीडिया इण्डिया लि0 नई दिल्ली
	वर्ष 1994	-	मई के सभी अंक
	1995	-	फरवरी के दो अंक
	1996	-	अप्रैल के तीन अंक

		1998	-	नवम्बर के सभी अंक
		1999	-	जनवरी, फरवरी के अंक
		2000-2006	-	सभी अंक
4.	राष्ट्रीय सहारा दैनिक		-	लखनऊ संस्करण
5.	अमर उजाला दैनिक		-	झांसी संस्करण
6.	दैनिक जागरण दैनिक		-	झांसी संस्करण
7.	हिन्दुस्तान दैनिक		-	लखनऊ संस्करण

साक्षात्कार-अनुसूची

<u>वृद्धों से साक्षात्कार हेतु</u>

साक्षात्कार अनुसूची का प्रारूप

बदलते परिवेश में पनपते अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के विभिन्न आयामों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन
(हमीरपुर जनपद के विशेष संदर्भ में)

निर्देशिका
डॉ0 दिव्या सिंह
पं.जे.एल.एन.पी.जी.का.बांदा

शोधार्थिनी
श्रीमती सुनीता त्रिपाठी
स्वामी नागा जी बालिका डिग्री
कालेज भरूआ सुमेरपुर (हमीरपुर)

1. सामान्य सूचनायें :-

 1.1 क्रम संख्या ....

 1.2 आयु ....

 1.3 धर्म ....

 1.4 जाति ....

 1.5 उत्तरदाता की शैक्षणिक स्थिति - अशिक्षित/हा.स्कूल/इण्टर/स्नातक/परास्नातक

 1.6 उत्तरदाता का वैवाहिक स्तर - विवाहित/अविवाहित/विधुर/विधवा/परित्यक्ति

 1.7 उत्तरदाता का भाषा ज्ञान - हिन्दी/अंग्रेजी/अन्य भाषा

2. वृद्ध व्यक्तियों का सामाजिक स्वरूप

 2.1 परिवार किस प्रकार का है संयुक्त/एकाकी

 2.2 परिवार में सदस्यों की संख्या कितनी है। ....

 2.3 परिवार के सदस्यों का शैक्षणिक स्वरूप ....

क्र. सं.	सदस्य का नाम	आयु	शैक्षणिक स्तर	सेवा का स्वरूप	आपसे सम्बन्ध

2.4 परिवार में भोजन व्यवस्था — स्वतंत्र/ मिश्रित

2.5 परिवार में भोजन का स्वरूप — शाकाहारी/मांसाहारी/मिश्रित

2.6 परिवार में धार्मिक क्रियाओं का अनुपालन किस प्रकार होता है — वर्ष भर का विवरण

2.7 परिवार की सत्ता — मातृ सत्तामक/ पितृ सत्तामक

2.8 परिवार में पर्दा प्रथा विद्यमान है — हां/ नहीं

2.9 जादू/टोने आदि पर विश्वास करते हैं — हां/ नहीं

2.11 आकस्मिक आपत्ति में परिवार के सदस्य एकीकृत रूप में निराकरण के लिए तत्पर रहते हैं — हां /नहीं

2.12 पारिवारिक समस्याओं के निराकरण के लिए महिलाओं के विचारों को उचित स्थान दिया जाता है — हां/ नहीं

2.13 पारिवारिक स्थिति से संतुष्ट हैं — हां/नहीं/कुछ नहीं कह सकते हैं

3. आर्थिक अध्ययन :-

3.1 परिवार में आय के स्रोत — कृषि/सेवा/उद्योग/दुकानदारी/मिश्रित

3.2 परिवार के समस्त स्रोतों से प्राप्त मासिक आय

क्र.सं.	आय का स्रोत	आय	समस्त स्रोतो से प्राप्त आय का कुल योग

3.3 परिवार में उपलब्ध सुविधाओं का स्वरूप :-

क. पत्र पत्रिकायें आदि — हां/ नहीं

ख. रेडियो — हां/ नहीं

ग. टी.बी./वी.सी.आर. — हां/ नहीं

घ. फ्रिज /कूलर — हां/ नहीं

ड़ स्कूटर /कार आदि — हां/ नहीं

3.4 आपको पेंशन मिलती है — हां/ नहीं

3.5 आपके द्वारा किये गये सेवाकाल में प्रमुख आर्थिक गतिविधियों का विवरण

क. मकान निर्माण पर व्यय — हां/ नहीं

ख. कन्या विवाह पर खर्च किया हां/ नहीं

ग. बच्चों की शिक्षा पर खर्च किया हां/ नहीं

घ. आप द्वारा की गई आर्थिक बचत का स्वरूप पोस्टआफिस/बैंक/अन्य मद

4. राजनैतिक अध्ययन

4.1 क्या आप राजनैतिक गतिविधि में भाग लेते हैं हां/ नहीं

4.2 आप किस राजनैतिक दल के समर्थक हैं भाजपा/कांग्रेस/सपा/बसपा/अन्य

4.3 वर्तमान राजनैतिक संरचना उचित है हां/ नहीं

4.4 राष्ट्रीय विकास में राजनैतिक सहयोग के प्रसंग में मत व्यक्त कीजिए।

4.5 अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रसंग में अपने विचार व्यक्त कीजिए।

4.6 साम्प्रदायिक उन्माद राजनैतिक प्रयासों द्वारा समाप्त किये जा सकते हैं सहमत/असहमत/कुछ नहीं

4.7 वृद्ध व्यक्तियों की समस्याओं का निराकरण राजनैतिक प्रयासों द्वारा किया जा सकता है। हां/ नहीं

4.8 स्थानीय राजनैतिक दल वृद्ध व्यक्तियों को सम्मान देते हैं हां / नहीं

5. पारिवारिक समान्जस्य का अध्ययन

5.1 आप स्वतः का कार्य करने में सक्षम है हां/ नहीं

5.2 आप किसी बीमारी से ग्रसित हैं हां/ नहीं

5.3 आपको प्राप्त होने वाली पेंशन का व्यय किन मद में होता है। स्वयं के खर्च में/ परिवार के खर्च में

5.4 आपकी दिनचर्या क्या है प्रातःकाल से प्रारम्भ कर रात्रि तक का विवरण

5.5 आप किस क्लब अथवा समाजसेवी संस्था के सदस्य हैं हां/ नहीं

5.6 आर्थिक गतिविधियों में आप भाग लेते हैं हां/नहीं

5.7 पारिवारिक वैमनस्य विद्यमान है हां/ नहीं

5.8 पारिवारिक महिलाओं में कलह होता है हां/ नहीं

5.9 पारिवारिक कलह में आपकी भूमिका क्या रहती है — सहज/उग्र/असाधारण/प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते हैं

5.10 आपके प्रति परिवार के बच्चों (अल्पायु) का लगाव — उचित है/अधिक है/नहीं है।

5.11 परिवार में सास-बहू के झगड़ों का स्वरूप — सामान्य/उग्र/अनियंत्रित/झगडा उत्पन्न नहीं होता

5.12 आपके प्रति बहुओं का व्यवहार — उचित/ अनुचित नहीं है।

5.13 आपके मतानुसार वृद्ध व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता है — हां/ नहीं

5.14 क्या स्थानीय प्रशासन आपकी समस्याओं को हल करने में सक्षम है — हां/ नहीं

5.15 पारिवारिक सामंजस्य स्थापित करने के लिए मित्रों अथवा रिश्तेदारों की मदद की आवश्यकता पड़ती है — हां/ नहीं

5.16 पारिवारिक सामंजस्य में अन्य प्रकार की कोई कठिनाई हो तो उल्लेख कीजिए — हां/ नहीं

5.17 भारत वर्ष में वृद्ध व्यक्तियों की आकांक्षाओं के बारे में मुक्त विचारों का विवरण दीजिए।

5.18 अन्य कोई सुझाव

धन्यवाद

युवाओं से साक्षात्कार हेतु

साक्षात्कार अनुसूची का प्रारूप

बदलते परिवेश में पनपते अन्तर-पीढ़ी संघर्ष के विभिन्न आयामों का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन
(हमीरपुर क्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

निर्देशिका
डॉ0 दिव्या सिंह
पं.जे.एल.एन.पी.जी.का.बांदा

शोधार्थिनी
श्रीमती सुनीता त्रिपाठी
स्वामी नागा जी बालिका डिग्री
कालेज भरूआ सुमेरपुर (हमीरपुर)

1. सामान्य सूचनायें :-

1.1 क्रम संख्या ....

1.2 आयु ....

1.3 धर्म ....

1.4 जाति ....

1.5 उत्तरदाता की शैक्षणिक स्थिति - अशिक्षित/हा.स्कूल/इण्टर/स्नातक/परास्नातक

1.6 उत्तरदाता का वैवाहिक स्तर - विवाहित/अविवाहित/विधुर/विधवा/परित्यक्ति

1.7 उत्तरदाता का भाषा ज्ञान - हिन्दी/अंग्रेजी/अन्य भाषा

2. युवाओं का सामाजिक स्वरूप

2.1 परिवार किस प्रकार का है संयुक्त/एकाकी

2.2 परिवार में सदस्यों की संख्या कितनी है। ....

2.3 परिवार के सदस्यों का शैक्षणिक स्वरूप ....

क्र. सं.	सदस्य का नाम	आयु	शैक्षणिक स्तर	सेवा का स्वरूप	आपसे सम्बन्ध

2.4 परिवार में भोजन व्यवस्था स्वतंत्र/ मिश्रित

2.5 परिवार में भोजन का स्वरूप शाकाहारी/मांसाहारी/मिश्रित

2.6 परिवार में धार्मिक क्रियाओं का अनुपालन
किस प्रकार होता है वर्ष भर का विवरण

2.7 परिवार की सत्ता का स्वरूप मातृ सत्तात्मक/ पितृ सत्तात्मक

2.8 परिवार में पर्दा प्रथा विद्यमान है हां/ नहीं

2.9 यदि हॉं तो क्या आप पर्दाप्रथा के समर्थक
हैं हॉं/ नहीं

2.10 जादू/टोने आदि पर विश्वास करते हैं हां/ नहीं

2.11 आकस्मिक आपत्ति में परिवार के सदस्य एकीकृत रूप में
निराकरण के लिए तत्पर रहते हैं हां /नहीं

2.12 पारिवारिक समस्याओं के निराकरण के लिए आपके के विचारों
को उचित स्थान दिया जाता है हां/ नहीं
यदि नहीं तो आप कैसा अनुभव करते हैं बुरा /अच्छा/ कोई फर्क नहीं पड़ता

2.13 पारिवारिक स्थिति से संतुष्ट हैं हां/नहीं/कुछ नहीं कह सकते हैं

3. आर्थिक अध्ययन :-

3.1 परिवार में आय के स्रोत कृषि/सेवा/उद्योग/दुकानदारी/मिश्रित

3.2 परिवार के समस्त स्रोतों से प्राप्त मासिक आय

क्र.सं.	आय का स्रोत	आय	समस्त स्रोतो से प्राप्त आय का कुल योग

3.3 परिवार में उपलब्ध सुविधाओं का स्वरूप :-

क. पत्र पत्रिकायें आदि हां/ नहीं

ख. रेडियो हां/ नहीं

ग. टी.बी./वी.सी.आर. हां/ नहीं

घ. फ्रिज /कूलर हां/ नहीं

ड़ स्कूटर /कार आदि हां/ नहीं

3.4 आपका व्यवसाय बेरोजगार/नौकरी/व्यवसाय

3.5 आपके द्वारा अब तक की गयी आर्थिक गतिविधियों का विवरण

क. मकान निर्माण पर व्यय — हां/ नहीं

ख. कन्या विवाह पर खर्च किया — हां/ नहीं

ग. बच्चों की शिक्षा पर खर्च किया — हां/ नहीं

ड़. बुजुर्गो की सेवा में — हॉं /नहीं

च. आप द्वारा की गई आर्थिक बचत का स्वरूप — पोस्टआफिस/बैंक/अन्य मद

4. राजनैतिक अध्ययन

4.1 क्या आप राजनैतिक गतिविधि में भाग लेते हैं — हां/ नहीं

4.2 आप किस राजनैतिक दल के समर्थक हैं — भाजपा/कांग्रेस/सपा/बसपा/अन्य

4.3 वर्तमान राजनैतिक संरचना उचित है — हां/ नहीं

4.4 राष्ट्रीय विकास में राजनैतिक सहयोग के प्रसंग में मत व्यक्त कीजिए।

4.5 राजनैतिक कियाकलापों में बुजुर्गो को सलाह देते हैं — हॉं/ नहीं

4.6 यदि हॉं तो क्या उसे वे मानते हैं — हॉं / नहीं

4.7 यदि नहीं तो आपको कैसा लगता है । — बुरा/अच्छा/कोई फर्क नहीं

4.8 क्या बुजुर्ग आपको राजनैतिक गतिविधियों में सलाह देते हैं — हॉं / नहीं

4.9 यदि हॉं तो क्या आप उस पर अमल करते हैं — हॉं/ नहीं/ कभी-कभी

4.10 साम्प्रदायिक उन्माद राजनैतिक प्रयासों द्वारा समाप्त किये जा सकते हैं — सहमत/असहमत/कुछ नहीं

4.11 वृद्ध व्यक्तियों की समस्याओं का निराकरण राजनैतिक प्रयासों द्वारा किया जा सकता है। — हां/ नहीं

4.12 स्थानीय राजनैतिक दल वृद्ध व्यक्तियों को सम्मान देते हैं — हां / नहीं

5. पारिवारिक समान्जस्य का अध्ययन

5.1 आप बुजुर्गो की सेवा करते हैं — हां/ नहीं

5.2 क्या आप बुजुर्गो के विचारों का सम्मान करते हैं — हां/ नहीं

5.3 आपको प्राप्त होने वाली आय का उपयोग बुजुर्गो की सेवा में करते हैं — हॉं /नहीं

5.4 आपकी दिनचर्या क्या है — प्रातःकाल से प्रारम्भ कर रात्रि तक का विवरण

5.5 आप किसी क्लब अथवा समाजसेवी संस्था के सदस्य हैं — हां/ नहीं

5.6 आर्थिक गतिविधियों में आप भाग लेते हैं — हां/नहीं

5.7 बुजुर्गो के प्रति पारिवारिक वैमनस्य विद्यमान है — हां/ नहीं

5.8 आप और बुजुर्गो के मध्य कलह होता है — हां/ नहीं

5.9 पारिवारिक कलह में आपकी भूमिका क्या रहती है — सहज/उग्र/असाधारण/प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते हैं

5.10 आपके प्रति बुजुर्गो का लगवा कैसा है — उचित है/अधिक है/नहीं है।

5.11 परिवार में सास-बहू के झगड़ों का स्वरूप — सामान्य/उग्र/अनियंत्रित/झगडा उत्पन्न नहीं होता

5.12 आपके परिवार के अन्य युवाओं का बुजुर्गो के प्रति व्यवहार कैसा है — उचित/ अनुचित नहीं है।

5.13 आपके मतानुसार वृद्ध व्यक्तियों के पुनर्वास के लिए संवैधानिक संशोधन की आवश्यकता है — हां/ नहीं

5.14 क्या आप बुजुर्गो की समस्याओं को हल करने में सक्षम है — हां/ नहीं

5.15 आपको युवाओं और बुजुर्गो के मध्य सामंजस्य स्थापित करने के लिए मित्रों अथवा रिश्तेदारों की मदद की आवश्यकता पड़ती है — हां/ नहीं

5.16 युवाओं और बुजुर्गो के मध्य पारिवारिक सामंजस्य में अन्य प्रकार की कोई कठिनाई हो तो उल्लेख कीजिए — हां/ नहीं

5.17 भारत वर्ष में बुजुर्गो की आकांक्षाओं एवं उनकी पूर्ति के बारे में मुक्त विचारों का विवरण दीजिए।

5.18 क्या आप मानते हैं कि वर्तमान में अन्तर-पीढ़ी संघर्ष विद्यमान हैं — हॉ/ नहीं/ कुछ नहीं कह सकते

5.19 अन्तर-पीढ़ी संघर्ष को कम करने हेतु कोई सुझाव

धन्यवाद